

विभाग : 18

कुंडलिनी जागरण पर आधारित ध्यान



Figure 306. Sushumna Nadi, Center of the Sushumna

धारणा - 164

कुण्डलिनी जागरण ध्यान

ध्यान सूक्ति - 164

देह कुण्ड में स्थित कुण्डलिनी, जगत का मूल आधार कुण्डलिनी ।
साधक कुण्डलिनी शक्ति को ध्यायो, शक्ति जगाई परम पद पाओ ।।

ध्यान विधि - 164

शरीर रूपी कुण्ड में स्थित
परम जैविक शक्ति पर
ध्यान करते हुए उसी
विशेष रूप से जगाकर
परम पद को प्राप्त कर
लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-12) / 5

पहले साधक जागता है फिर कुण्डलिनी जागती है। कुण्डलिनी जाग्रत हो जाने से तो साधक सहज मौन में चला जाता है। कोई भी सिद्धि स्वयं दर्शनीय होती है, उसका प्रदर्शन नहीं करना पड़ता। क्या सूर्य कभी कहता है कि मेरा प्रकाश बढ़ गया? नदी कभी बोलती है कि मुझे शीतलता का आविर्भाव हो गया है? क्या पका हुआ फल कहता है कि मैं अब पक गया हूँ? वह जब पक जाता है तब वृक्ष से उसका नाता पूरा हो जाता है और कोई न कोई भाग्यवान उसे प्राप्त कर लेता है। बस, ठीक ऐसा ही है कुण्डलिनी जागरण के संदर्भ में।

प्यारे साधको!

कुण्डलिनी का स्थान शरीर में कहाँ है? – ऐसा प्रश्न किसी भी साधक के मन में उठना स्वाभाविक है। परंतु सबसे पहले तो यह याद रखना जरूरी है कि वह एक शक्ति है। इसलिए सूक्ष्म है। वह सूक्ष्म रूप में कहाँ बसी है? उसके प्रति और शरीर की अन्य नाड़ियों के स्थानों के प्रति केवल इशारा दिया जा सकता है। वह स्थूल रूप से किसी की पकड़ में नहीं आ सकती। किसी शायर ने बहुत प्यारी बात बताई है –

मैं तो हवा हूँ किस तरह पहरे लगाओगे।

महसूस ही करोगे कभी छू न पाओगे॥

दोस्तो, ठीक ऐसे ही साधना की पराकाष्ठा में आप कुण्डलिनी की शक्ति को महसूस ही कर सकते हैं परंतु छू नहीं सकते। हाँ, वह जब जाग्रत होती है तब आप इतने आकर्षक, ऊर्जावान, ओजस्वी और प्रतिभापूर्ण बन जाते हैं कि आपके इर्द गिर्द छाई हुई उसकी शक्तिपूर्ण तरंगें औरों को छू जाती हैं।

योगविदों ने और तंत्र विदों ने कुण्डलिनी के बारे में बहुत कुछ

कहा है फिर भी मैं कहूँगी कि वह गूंगे का गुड़ जैसा है। मैं कहती हूँ कि –
 जो जाने सो बोलत नाही
 जो बोले सो जानत नाही।

जिसकी यह शक्ति जग जाती है वह जानने के बाद भी बोल नहीं सकता और जो कुण्डलिनी की बहुत बातें करता है, वह उसे जान ही नहीं पाया। जान लिया फिर बोलना क्या? वह कोई ढोल पीटने की बात नहीं है।

कुछ लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि मेरी कुण्डलिनी जाग गई है। तब मुझे वह बात बहुत हास्यास्पद लगती है। मुझे कहने का मन होता है कि तेरी कुण्डलिनी भले जाग गई परंतु तू अभी सोया हुआ है।

प्यारे साधको !

पहले साधक जागता है फिर कुण्डलिनी जागती है। कुण्डलिनी जाग्रत हो जाने से तो साधक सहज मौन में चला जाता है। कोई भी सिद्धि स्वयं दर्शनीय होती है, उसका प्रदर्शन नहीं करना पड़ता। क्या सूर्य कभी कहता है कि मेरा प्रकाश बढ़ गया? नदी कभी बोलती है कि मुझे शीतलता का आविर्भाव हो गया है? क्या पका हुआ फल कहता है कि मैं अब पक गया हूँ? वह जब पक जाता है तब वृक्ष से उसका नाता पूरा हो जाता है और कोई न कोई भाग्यवान उसे प्राप्त कर लेता है। बस, ठीक ऐसा ही है कुण्डलिनी जागरण के संदर्भ में।

जिसकी कुण्डलिनी जाग जाती है, वह कभी ढिंढोरा नहीं पीटता, वह तो विशेष मौन, विशेष शांत, विशेष प्रसन्न और विशेष बोधपूर्ण हो जाता है। कभी-कभी कोई मुझे पूछते हैं कि उसकी कुण्डलिनी कब

जाग्रत होगी। दोस्तो, यह कोई ज्योतिष का विषय नहीं है कि मैं उसे कुण्डली देखकर बता दूँ कि उसकी कुण्डलिनी कब जाग्रत होगी। हाँ, यह भी याद रहे! सब बातें जन्म कुण्डली में भी नहीं होती और हाथ की लकीरों में भी नहीं होती। कुछ खास लकीरें नई बनानी पड़ती हैं।

दोस्तो, ज्योतिष भविष्यवाणी है। मेरा काम है आपको वर्तमान में जीना सिखाना। वर्तमान को समझना। वर्तमान में जागना और वर्तमान के लिए औरों को जगाते रहना।

फल कभी वृक्ष को पूछता नहीं है कि वह (फल) कब पकेगा। वह डाली से जुड़ा रहता है। वृक्ष की सूक्ष्म नसों से शक्ति को पाता रहता है। धीरे धीरे रूपांतरित होता है; पहले बीज, फिर वृक्ष, फिर फूल, फिर फल – वह मीठा होने के लिए वर्षा की भीनास (गीलापन) को अपने में खींचता है। और ठंडी और धूप को सहन करके मिठासपूर्ण होता है। ऐसा ही शक्तिपात का, और कुण्डलिनी जागरण का।

कुण्डलिनी जागरण की घटना में बहुत सारे परिबल एक साथ काम करते हैं – साधक की पात्रता, साधना की सही समझ, जागने की लगन, सिद्ध पुरुषों का सानिध्य, दृढ़ संकल्प और साधना में निरंतरता तथा गुरु के आशीर्वाद। तब जाकर बीज वृक्ष बनता है। वृक्ष सफल बनता है तथा फल परिपक्व होकर संसार वृक्ष से भिन्न होकर दूसरों में अपनी मिठास बांटकर फिर से लुप्त हो जाता है। कुछ कुछ फलों में तो बीज भी नहीं होते। ऐसे फल हमेशा हमेशा के लिए महाअस्तित्व में समा जाते हैं। क्योंकि जब बीज ही नहीं बचे तो फिर से जन्म लेने का सवाल ही खत्म हो गया।

प्यारे साधको!

कुण्डलिनी जागरण चार प्रकार से हो सकता है। एक तो तीव्र और कठोर योग साधना से जो हठ योगी करते हैं। दूसरा सघन ध्यान से। तीसरा - कभी कभी कुछ विशेष व्यक्ति पर गुरु द्वारा शक्तिपात से। चौथा - कभी कभी किसी अलौकिक घटना का अचानक घटने से भी यह संभव हो जाता है। परंतु मनुष्य की एक तकलीफ है कि हर कार्य के पीछे उसका मन लालच से भरा है। धन-दौलत, घर-बार, बीवी-बच्चे से भागकर सन्यास लेकर ध्यान कर रहा है और उसे कोई पूछेगा कि ध्यान क्यों कर रहे हो? तब कहता है - कुण्डलिनी शक्ति जगाने के लिए।

दोस्तो, ऐसा अभिगम ही गलत है। मैं बार बार कहती हूँ। आप पौधे को सींचते जाओ, वक्त आने पर पौधे की पात्रता के अनुसार पुष्प या फल अपनेआप लगेँगे। आप केवल सिंचन में रस रखना। फल-फूल में नहीं। आप अगर फल-फूल के लिए सिंचन करते हो तो आप स्वार्थी हो, कामी हो; परंतु अगर प्रकृति प्रेम से पौधे को सींच रहे हो तो वह आपका आनंद है, स्वतंत्रता है।

प्यारे भक्तो!

ध्यान सकाम भाव से नहीं किया जाता। केवल आनंद के लिए करो। आपकी प्रकृति अगर आध्यात्मिक है, आप आध्यात्मिक जीवन को प्रेम करते हो तो अध्यात्म के पौधे को निष्काम भाव से ध्यान के द्वारा सींचते रहो; कुण्डलिनी जागरण सहज ही हो जाएगा। आनंद समय के साथ परमानंद ही बनता है वह कभी कम नहीं होता।

अब कुण्डलिनी के स्थान की ओर शरीर विज्ञान के द्वारा संकेत करने का प्रयास कर रही हूँ। योग और तंत्र शास्त्र के अनुसार भाषा और

नाड़ियों का नाम अलग है। मेरा प्रयास रहेगा कि आधुनिक और पुरातन दोनों शब्दावलियों का उपयोग करके – कुण्डलिनी शक्ति क्या है? इस विषय से आपको अवगत कराऊं।

मनुष्य शरीर में असंख्य नाड़ियाँ हैं परंतु पूरे शरीर के संचालन का आधार प्रमुख तीन नाड़ियों पर है – ईडा, पिंगला और सुषुमणा। आधुनिक विज्ञान सुषुमणा को स्पाइनल कॉर्ड नाम से जानता है। ईडा और पिंगला सिम्पेथेटिक और पैरासिम्पेथेटिक नर्व नाम से प्रसिद्ध हैं। जिन्हें चंद्र तथा सूर्य नाड़ियाँ भी कहते हैं। जो मैंने पहले भी कहीं बताया है। सुषुमणा नाड़ी मनुष्य के मेरुदंड में से पसार होकर ऊपर की ओर चढ़ती है और उसके बाँय और दाहिना तरफ ईडा और पिंगला भी नीचे से ऊपर की ओर प्राणों का संचार करती हैं। मेरुदंड के भीतर चलने वाली सुषुमणा एक सूक्ष्म नलिका जैसी है। सामान्य रूप से ईडा और पिंगला नाड़ियों से श्वास प्रश्वास के रूप में प्राण प्रवाहित होता रहता है। ईडा तमोगुण प्रधान और पिंगला रजोगुण प्रधान है। ईडा, पिंगला और सुषुमणा तीनों में से सुषुमणा को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। जो गुदा के निकट से मेरुदंड के भीतर होती हुई मस्तिष्क के ऊपर तक जाती है। और उसकी दाई तथा बाँई ओर से पिंगला तथा ईडा नासिका के ऊपर के मूल तक जाती हैं और इस तरह भ्रूमध्य में तीनों नाड़ियाँ परस्पर मिल जाती हैं।

प्यारे साधको!

अब योग की भाषा में थोड़े विस्तार से इन नाड़ियों को समझो। ताकि कुण्डलिनी को समझना आसान हो जाए। सुषुमण के भीतर एक वज्र नाम की नाड़ी है, वज्र के भीतर चित्रणी नाड़ी है और चित्रणी के

भीतर है ब्रह्म नाड़ी। ये सब नाड़ियाँ मकड़ी के जाले के समान अत्यंत सूक्ष्म हैं। ये नाड़ियाँ सत्व प्रधान, अद्भुत और जीवन का आधार रूप हैं। ये सूक्ष्म शरीर तथा प्राण के स्थानपूर्ण हैं। उन शक्तियों के केन्द्र को पद्म अथवा चक्र कहते हैं। जिसकी बात आगे विस्तार से की जाएगी।

वे चक्र हैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार। ये चक्र प्रकाश और विद्युत से युक्त हैं। इन चक्रों पर ही शरीर के तंत्रों का आधार है।

साधारण अवस्था में ये चक्र बिना खिले कमल के समान अधोमुख रहते हैं। परंतु ध्यान द्वारा तथा यौगिक क्रियाओं के द्वारा ये विकसित होकर उर्ध्वमुख हो सकते हैं। जब ये उर्ध्वमुख होते हैं तब इनकी दिव्य शक्तियाँ विकसित होकर अपनी अनुभूति कराने लगती हैं।
प्यारे साधको!

एक बात हमेशा याद रखना। ताकि आप चक्र भेदन की क्रिया को स्थूल समझकर गुमराह न हो जाओ। आजकल बाजार में तथाकथित ध्यान और योग का बोलबाला है। आज आध्यात्मिक जाग्रति के स्थान पर यह विषय तथाकथित योगियों में स्पर्धा, प्रदर्शन और धन का विषय बन गया है। सब अपनी अपनी भीड़ बढ़ाने के लिए विज्ञान और टेक्नोलोजी का आधार लेकर नाड़ियों के चित्र, मानव आकृति और चक्रों की स्थूल स्थिति और आकृति भी बड़े बड़े पर्दों पर दिखाकर भीड़ को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

दोस्तो, वैसे भी भीड़ और भेड़ में आधी मात्रा का ही फर्क है। भीड़ के पास न कोई सच्ची प्यास, न समर्पण और न ही उचित समझ है। नाड़ियों अथवा स्थूल चित्रों को देखकर बेचारा साधारण अथवा

प्रारंभिक अवस्था वाला साधक उठापटक शुरू कर देता है। कोई भ्रष्ट्रिका करने लगता है तो कोई कपालभाति, कोई उज्जायी और शीतली प्राणायाम; तो कोई अन्य किसी और प्रकार की शारीरिक छेड़-छाड़ से।

सावधान! चित्र में दिखाए हुए चक्रों की स्थूल आकृति उनके सूक्ष्म स्वरूप का बोध कराने के लिए केवल अनुमानिक है। वह संकेत मात्र है, वहाँ कोई वास्तविकता नहीं। पेल्विक अथवा कार्डिएक प्लेक्स आदि नाम से प्रभावित होकर चित्रों के स्थानों के अनुसार शरीर के स्थूल अंगों को उन सूक्ष्म केन्द्रों का वास्तविक स्थान नहीं मान लेना चाहिए। यह तो संकेत मात्र है। परंतु आज बड़े पैमाने पर हर क्षेत्र की तरह अध्यात्म क्षेत्र में ठगबाजी चल रही है। अध्यात्म की वास्तविक समझ के अभाव में भेड़िया धसान की भांति कोई श्वास के साथ, तो कोई पेट के साथ, तो कोई आसनों द्वारा शरीर के साथ छेड़-छाड़ करके कभी कभी तो स्वास्थ्य के स्थान पर बीमारियाँ मोल लेते हैं। मेरे पास ऐसे काफी लोग आते हैं कि जिन्होंने नासमझी में की हुई और तथाकथित योगगुरुओं के द्वारा आधीअधूरी बताई गई योगविधियों के बुरे असर का शिकार बन गए हैं। ऐसे लोगों को मैं मात्र ध्यान के लिए ही प्रेरित करती हूँ।

प्यारे भक्तो!

तंत्र ग्रंथ बताते हैं कि योनीमंडल के मध्य में तेजोमय, रक्तवर्ण, क्लिं बीजरूप, कंदर्प नाम का स्थिर वायु विद्यमान है। जिसके मध्य में ब्रह्मनाड़ी के मुख में स्वयंभू लिंग है। इसमें कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन कुंडल में लिपटी हुई शंख के आवर्तन के समान है। वही मूल शक्ति है, जिससे सारे संसार का व्याप है। मूल शक्ति अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का मुख्य आधार होने से शरीर के निम्न भाग के प्रथम चक्र को मूलाधार

चक्र कहा गया है।

कुछ योगियों के अनुसार योनी मंडल के त्रिकोण स्थान रूपी खाली जगह अर्थात् उदरकुंड में सर्प की भांति साढ़े तीन लपेटे मारकर वह शक्ति सुशुप्त रूप से पड़ी है, इसलिए उसे कुण्डलिनी कहते हैं। यह नाड़ी अपने अंतिम भाग को मुंह में दबाकर शंखाकार होकर सो रही है। इसलिए सर्पिणी की उपमा दी गई है। पश्चिम के चिंतक कुण्डलिनी शक्ति को सरपेन्ट पावर कहते हैं। यह नाड़ी विद्युत समान अद्भुत और दिव्य शक्तिपूर्ण नाड़ी है फिर भी निष्क्रिय होकर पड़ी है।

भारत उपरांत रोम और यूनान के तत्ववेत्ता जैसे कि प्लेटो और पायथागोरस जैसे आत्मदर्शी विद्वानों के साहित्य में भी नाभि के पास एक अद्भुत और दिव्य शक्ति विद्यमान है ऐसा संकेत पाया जाता है।

प्यारे साधको!

अब, कुण्डलिनी जागरण क्या है? यह समझिए।

योग और तंत्रविदों का कहना है कि यह नाड़ी यदि किसी भी प्रकार से अपने लपेटों से खुलकर सीधी हो जाए अर्थात् यह शक्ति जाग्रत हो जाए और इसका संचार सुषुम्णा में प्रारंभ हो जाए अथवा स्थूल शब्दों में कहें तो इस नाड़ी का मुख सुषुम्णा में प्रवेश कर ले तो मनुष्य के भीतर दिव्य शक्तियाँ प्रगट होने लगती हैं। यह शक्ति बुद्धि को परिशुद्ध कर देती है। जिसे पतंजलि ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं। इससे मनुष्य का परम सत्य एवं शांति में प्रवेश हो जाता है। इस अवस्था को ही कुण्डलिनी जागरण कहते हैं।

यह शक्ति मानो एक प्रकार का नोनएक्टिव विद्युत प्रवाह है।

ध्यान के द्वारा अगर वह स्विच ऑन हो जाए तो शरीर के कई उपकरण

विशेष कार्यरत और शक्तिपूर्ण हो जाते हैं।

यह विद्युत प्रवाह मूलाधार से उठकर क्रमशः सभी चक्र और नाड़ियों को प्रकाशित कर देता है और उसे अपार तथा अनुपम शक्ति से भर देता है। कुण्डलिनी की शक्ति जिस चक्र तक पहुंच जाती है वह चक्र अधोमुख से उर्ध्वमुख हो जाता है अर्थात् उन चक्रों की शक्ति उर्ध्वगामी बनकर कुछ अद्भुत परिणाम देती है।

प्यारे साधको!

इस रूपक को अथवा प्रतीक को ज़रा समझना पड़ेगा। चक्रों का अधोमुख और उर्ध्वमुख होने का अर्थ ऐसा मत करना कि जो चक्र शरीर में उलटे हैं वे सीधे होकर उनका मुंह ऊपर की ओर हो जाएगा। ये सब तो यौगिक शब्दावली हैं, शारीरिक रूप से कोई चक्र अधोमुख से उर्ध्वमुख हो जाएगा ऐसे स्थूल क्रिया के रूप में मत समझना।

मैं तो कहूँगी कि केवल चक्र ही अधोमुखी नहीं परंतु सभी मनुष्य अधोमुखी जीवन जी रहे हैं। जब मैं ऐसा कह रही हूँ तो इसके पीछे कोई स्पष्ट कारण है। आप ज़रा सोचो! आज के युग में मनुष्य भले कितना भी विकसित हो रहा हो। आर्थिक रूप से भले कितना भी सम्पन्न हो रहा हो परंतु आप ऐसा नहीं कह पाएंगे कि वह उर्ध्वमुखी या उर्ध्वगामी या उर्ध्वरितस हो रहा है।

आज दुनिया के हर कौने में एक ही चिंता व्याप्त हो रही है। सब एक ही बात कहते हैं कि मनुष्य अधःपतित हो रहा है। पता नहीं ऐसी क्यों है? परंतु मनुष्य की कामेन्द्रिय, उसका पेट, उसका हृदय, उसका मन, उसकी दृष्टि और उसकी बुद्धि सभी चक्र अधोमुखी हैं। उन्हें पार्थिवता खींच रही है। उसके मन, मति और इन्द्रियाँ विषय वासना में ही भटक

रहे हैं। मनुष्य की वासना की भूख शांत ही नहीं होती। यह पूरी मनुष्यता का एक पुराना प्रश्न है।

शायद इसीलिए योग शास्त्र कहता है कि मनुष्य के पास शक्ति के केन्द्र तो हैं परंतु बेचारे सब उल्टे हैं, अधोमुखी हैं। आदमी के कर्म, उसका मन, उसके भाव, उसकी सोच सब अधोगति कर रहे हैं।

दोस्तो, सबकुछ अधोगामी है तभी तो उर्ध्वगति की बात करनी पड़ती है। अधोगामी है इसीलिए तो उर्ध्वगति की चिंता है। जो उल्टा है उसे ही सीधा करने का सवाल उठता है। इसीलिए तो ज्ञानियों ने, ध्यानियों ने और योगियों ने कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर चक्रों को सीधे करने की बात की है।

मनुष्य अगर उर्ध्वगामी ही होता तो क्या जरूरत थी इन बातों की? मैं तो कहूंगी कि अगर आदमी जागा हुआ है तो बेचारी कुण्डलिनी भले सोती रहे। जो जन्म जन्मांतर से सोती आई है उसे क्यों डिस्टर्ब करें। सोने दो ना उसे शांति से। परंतु मूल में मनुष्य को जगान के लिए कुण्डलिनी शक्ति को जगाना आज अनिवार्य हो गया है। आज का मनुष्य सहजता से सजग नहीं है।

अब अगर कुण्डलिनी शक्ति के प्रति ध्यान नहीं दिया गया तो अपनी मोहांधता के कारण पूरी मनुष्यता अशांति में गरक्राब हो जाएगी। हमारे मनीषियों के हृदय में मनुष्यों के प्रति करुणा जागी और मनुष्य स्वयं की मदद कर सके इसलिए उन्होंने मनुष्य के भीतर छिपी हुई शक्ति को ही ढूंढ निकाला कि जिससे मनुष्य अज्ञात है और अधःपतित होकर दुःखी हो रहा है। उन्होंने सोचा कि उसकी सुषुप्त शक्ति का उर्ध्वीकरण करके उसकी दिव्य शक्ति को जगाना चाहिए।

दोस्तो, आज के मनुष्य की स्थिति सुवास के पीछे पागल मृग जैसी होती जा रही है।

कस्तुरी कुण्डलि बसे मृग ढूँढे बन माही।

प्यारे साधको!

अमाप और अपार शक्ति आपके भीतर ही पड़ी है। एक स्वीच ऑन करन से जन्म जन्म का अंधेरा मिटाया जा सकता है। ध्यान में उतरो आपके सभी चक्र, जो जंक खा रहे हैं वे सक्रिय हो जाएंगे। प्रकाश और आनंद बरसने लगेगा। शांति और आशीर्वाद से आपका तन-मन भीगने लगेगा। जरूरत है केवल सोई हुई शक्ति को जगाने की।

प्यारे साधको!

वैसे तो कुण्डलिनी जागरण के लिए कई मार्ग बताए गए हैं परंतु मुझे विशेष शास्त्रीयता में नहीं पड़ना है। लोग शास्त्र को नहीं समझ सकते हैं अथवा उसकी भाषा से ऊब जाते हैं इसीलिए तो मेरे पास आते हैं। अगर मुझे भी यही करना है तो शास्त्र हैं ही, मेरी जरूरत कहाँ और क्या?

मुझे कुण्डलिनी जागरण से होने वाले चमत्कारों की भी बात नहीं करनी है। न ही कुण्डलिनी जागरण के लिए बताए गए आसन, बंध, मुद्रा या प्राणायाम की बात करनी है। एक समझदार वर्ग उन सारी बातों से अब ऊब गया है। कुतुहलवश जो लोग अधपके बाबाओं की शरण में जाकर उठापकट कर रहे हैं, वे भी थोड़ी सी आध्यात्मिक समझ आने के साथ ही बहुत जल्दी सारी उठापटक छोड़ देंगे। आज तो योग का उद्देश्य ही मारा गया है।

वास्तव में योग का अर्थ है, चित्त वृत्ति की शांति। परंतु आज योग के नाम से इतना हंगामा मच रहा है कि योग बेचारा कसरत बनकर रह गया और ध्यान तो बिलकुल खो ही गया। दाढ़ी बाल बढ़ाकर, भगवे लंगोट लपेटकर कुछ बाबा लोग मनुष्य को लंबा आयु दिलाने वाले फरिश्ते बन गए हैं। यह सब मनुष्य की लालच और अज्ञान का परिणाम है। अध्यात्म की असली खोज का अभाव है। धन और भीड़ के मद में कुंभकरण की निद्रा में सोए हुए तथाकथित बाबा लोग बेचारे सीधे साधे लोगों की कुण्डलिनी जगा देने की बात करते हैं। - यह कितना हास्यास्पद लगता है ?

कुछ दिनों के लिए योग के भ्रम में मनुष्य कुछ क्रियाओं के द्वारा खुद को आश्वासन देता रहता है परंतु अंत में थक जाता है। धन और समय का व्यय होता है। कुछ लोगों को आसनों की कसरत से थोड़ा बहुत शारीरिक फायदा हो भी जाए तो भी वे आध्यात्मिक रूप से तो खोखले ही रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ प्रमाणिक लोग हार मान लेते हैं। फिर से सही दिशा में खोज आरंभ कर देते हैं। कुछ ढोंगी लोग अपनी टंगड़ी ऊंची ही रखते हैं। ऐसे लोग कितने बेचारे हैं। ठगे गए लोगों में इतनी हिम्मत नहीं है कि वे ज़ाहिर में कबूल करें कि हम ठगे गए हैं। इसे योग के नाम पर एक सामूहिक अधोगति नहीं तो क्या कहेंगे ?

एक बार बीरबल को अकबर बादशाह ने कहा कि मुझे अजब तमाशा देखना है कि आज तक किसीने देखा न हो। बीरबल ने स्वीकार करते हुआ कहा कि खर्चा बहुत होगा। अकबर ने कहा कि खर्चा जितना भी हो परंतु देखना है। अकबर के धन से बीरबल ने यमुना तट पर एक संगेमरमर का महल बनवाया। फिर बादशाह को कहा कि आप मंत्रियों

के साथ चलिए। महल के झरोखे में सूर्योदय के समय ज़न्नत की हूर उतर आएगी और आप उसके लाजवाब हुस्न को देख पाएंगे। बादशाह चला मंत्रीमंडल के साथ परंतु कुछ दिखाई नहीं दिया। बीरबल ने कहा कि मैं परि के साथ बात करके आता हूँ। थोड़ी देर के बाद आकर कहा कि परि कह रही है कि बादशाह सहित सभी लंगोटी पहनकर आएँ तभी मैं दिखाई दूंगी। परि को देखने के मोह में स्वयं बादशाह, पूरा मंत्रीमंडल, अन्य दरबारियों के साथ सभा के सभी सदस्य मात्र लंगोटी पहनकर आ गए यमुना तट पर। संगेमरमर के झरोखे पर सूर्य का प्रतिबिंब परि जैसा चमक रहा था। बीरबल बोला देखो देखो, वो आ गई, चमक रही है, वह तो स्वर्ग की परि है इसलिए आम आदमी जैसी नहीं दिखती, उसकी तो झलक ही मिलती है। अब तो इज़्ज़त का सवाल था – फिर तो दो तीन दरबारी बोले मारशाअल्लाह क्या हुस्न है? तब मंत्री भी कहने लगे-हाँ, हाँ बहुत खूबसूरत है। तब पूरे सभाजन बोले वाह कितना अब्दुत सौन्दर्य, अंत में बेचारे बादशाह ने भी कह दिया – हाँ, हाँ अब दिखाई दी, क्या नूर है उसके चहरे का? फिर सब लोग वापस लौटे दरबार की ओर केवल लंगोटी भर। तब बीरबल ने कहा महाराज मेरा वादा पूरा हो गया। आपको अजब तमाशा देखना था ना! देखो मुगल साम्राज्य के इतिहास में राजा से लेकर दरबारी तक पूरा दरबार केवल लंगोटी में ही भरा हो। ऐसा तमाशा कभी नहीं हुआ है। क्या? यह सचमुच एक गज़ब तमाशा नहीं है!

प्यारे दोस्तो!

कुछ ऐसी ही स्थिति कुण्डलिनी जागरण को लेकर है। एक के साथ दूसरा झूठी हाँ में हाँ मिला लेता है। मैं कहती हूँ किसी भी बात का

भ्रम पालने से मनुष्य और भटक जाता है। उसकी विशेष अधोगति होती है। योग का झूठा ओहापोह करने से कुण्डलिनी नहीं जागती। वह तो अति शांत और अति एकांत और ध्यानावस्था में घटित होती एक रहस्यमय और गुप्त घटना है। जैसे कि बादल का बनना, कलि का मुस्कुराना, पुष्पों का खिलना, वहाँ कोई हंगामा होते देखा है।

प्यारे साधको!

जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है तब क्या होता है? मैं थोड़ी देर के लिए शास्त्रों के अवतरणों से हटकर मेरी नज़्म के कुछ कलाम खास आपके लिए देना चाहूँगी -

फिर दरिया नदिया से मिलता
और पेड़ जड़ों के बल चलता
धरती ऊपर अंबर नीचे
है होश जरा सा तो समझो।

अब बिन बादल बरसात भई
घर में ही बिजली काँध गई
तारीफ हुई ये तबाही की
है होश जरा सा तो समझो।

यहां आब में अंगारे जलते
और ख्वाब सभी सच में ढलते
अब कांटे में भी फूल खिलते
है होश जरा सा तो समझो।

गहराई वहां से ले जाती है
जहां दुनियां नहीं सताती है
और मस्ती बढ़ती जाती है
है होश जरा सा तो समझो।

ना कोई सफ़ीना ना माझी
फिर भी हम जीते हैं बीज़ी
तैराकी तिलस्मी से बहते
है होश जरा सा तो समझो।

ये किरने कहां से आती हैं?
ना दिया है ना बाती है
जो रस्ता नया दिखाती हैं
है होश जरा सा तो समझो।

यहां बिन बाती उजास भया
पैगंबर मेरे पास भया
अब बिन गोपियन का रास भया
चाहे मानो या ना मानो

यहां चंदा है पर दाग नहीं
यहां सूरज है पर आग नहीं
है खुशबू पर कोई बाग नहीं
चाहे मानो या ना मानो

अब त्याग नहीं कोई भोग नहीं
कोई अपने पराये लोग नहीं
दिन रैनी योग-वियोग नहीं
चाहे मानो या ना मानो

यहां बिन झांझर झांकार हुई
बिन नाचे थैं थैंकार हुई
बिन नारा जयजयकार हुई
चाहे मानो या ना मानो

प्यारे साधको!

कुछ योगाचार्य कहते हैं कि कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने

में छः मास से दो वर्ष तक का समय लगता है। परंतु मैं कहती हूँ कि सबकुछ आपकी समग्रता, निरंतरता, प्यास और साधना की तीव्रता पर आधारित है।

दोस्तो, ॐ का उपांशु जाप आपकी मदद कर सकता है। कभी कभी कुछ अद्भुत घटना अचानक भी घट जाती हैं। मैं आपसे कहती हूँ कि कुण्डलिनी के पीछे मत पड़ना। वह अंडे में से पक्षी के बच्चे के बाहर आने जैसी घटना है। आप धैर्य के साथ गहन शांति में उतरो और कुण्डलिनी जागरण की घटना को अपने ढंग से घटने दो। आप उसे केवल साधना की गर्मी दो। ध्यान को अपना प्रेम बना दो। प्रत्येक क्रिया के प्रति सजग रहो। एक दिन घटना अचानक घट जाएगी।

दोस्तो, घटना घटने के बाद भी केवल दृष्टा बने रहो। उसकी सुवास को प्रसरने दो। आप न तो उसके मालिक हो न ही गुलाम। वह घटना केवल आपके द्वारा घटी है। ऐसी समझ की क्षणों में जीवन मुक्ति का अनुभव होता है। कुछ भी होने के बावजूद भी आप शांत और साधारण बने रहो। सिद्धियों का प्रदर्शन करने में मत पड़ो।

यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम्।

न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित् स ब्राह्मणः॥

गूढधर्माश्रितो विद्वानज्ञातचरितं चरेत्।

अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत्॥

अर्थात् – जिसको कोई संत या असंत, अश्रुत या बहुश्रुत, सुवृत्त या दुर्वृत्त नहीं जानता, वह ब्रह्मनिष्ठ योगी है। गूढ़ धर्म का पालन करता हुआ विद्वान् योगी दूसरों से अज्ञातचरित रहे। अन्धे के समान, जड़ के समान

और मूक के समान पृथ्वी पर विचरण करे।

लोग कहते हैं कि कुण्डलिनी जागरण कष्टसाध्य है। मैं कहती हूँ कि किसी भी बात के लिए हठ पकड़ लेने से वह कष्टसाध्य बन जाती है। किसी भी बात का आग्रह दुःखदायक बनता है। दोस्तो, आपको हठयोग में नहीं जाना है। तंत्र कहता है कि ध्यान को मार्ग बनाओ बात अपने आप सरल हो जाएगी।

प्यारे साधको!

कुण्डलिनी जागरण की घटना को अति कठिन मत मानना। वेद से लेकर आज तक कुण्डलिनी जागरण की बात समान रूप से चली आ रही है। यही सबसे बड़ा सबूत है कि वह कष्टसाध्य नहीं है। अगर कुण्डलिनी जागरण कष्टसाध्य होता तो बात कबकी खो जाती। खोज जारी है और कुछ सिद्धजन अपनी अनुभूतियों की ओर इशारा कर रहे हैं। इससे ही सिद्ध होता है कि खोज संभव है और उपलब्धि हो सकती है।

यजुर्वेद, सौन्दर्य लहरी, योगकुण्डल्युप उपनिषद्, ज्ञानार्डव तंत्र, ललिता सहस्रनाम, देवीभागवत, वामेश्वर तंत्र, योगशिखोपनिषद्, षट्चक्रनिरूपण, घेरंड संहिता, हठयोग प्रदीपिका, ज्ञानेश्वरी गीता, शिवपुराण आदि अनेक ग्रंथों में कुण्डलिनी शक्ति का उल्लेख मिलता है। इतने सारे मनीषी जिस बात को कर रहे हैं, वह कपोलकल्पित नहीं हो सकती। उन सभी ने स्वानुभव के आधार पर संकेत किया है। फिर भी शब्दों से समझा जाए ऐसा विषय नहीं है।

प्यारे साधको!

कुण्डलिनी शक्ति के व्यक्त होने से मनुष्य के भीतर विस्फोट होता है। अगर वह इस बारे में सजग नहीं है तो मूलाधार पर सबसे ज्यादा असर आती है। कुछ योगियों के मतानुसार विषय वासना की मांग अनेक गुनी हो जाती है। अगर ऐसा हो तो उससे संकुचित नहीं होना है और वासना तृप्ति के लिए आपको सहयोग भी नहीं करना है। वासना के क्षण बहुत छोटे होते हैं। अगर आपके साथ कुछ ऐसा हो तो उन क्षणों में आप साक्षी बन जाना। क्षण चले जाएंगे और ऊर्जा ऊपर की ओर उठ जाएगी।

ऊर्जा के ऊपर उठने के साथ साथ नए नए चित्र विचित्र अनुभव हो सकते हैं क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति बिजली से भी ज्यादा वेगवान है। तो उसके जागरण की क्षणों में आपको विशेष सावधान, सचेत, सजग तथा निर्भय रहना है। घटनाओं के संग मत बहना। सबकुछ दृष्टा बनकर देखते रहना। अनुभवों की इधर उधर चर्चा करते मत फिरना।

शास्त्र कहता है कि

अधःस्रोता, वैजीवाः

अर्थात् जिसकी शक्ति नीचे की ओर बह रही है वह जीव है और

उर्ध्वस्रोता वैदेवाः

अर्थात् जिसकी शक्ति जाग्रत होकर उर्ध्वगामी बन जाती है वह मनुष्य पृथ्वी पर ही देवत्व को प्राप्त करता है।

प्यारे साधको!

दुनिया का प्रत्येक जीव कुण्डलिनी शक्ति और प्राणशक्ति साथ लेकर माता की कोख में आते हैं। तय आपको करना है कि आप जीव बनकर मरना चाहते हैं कि देवत्व प्राप्त करके।

कुण्डलिनी योग तंत्र कहता है कि सहस्रार चक्र में कामेश्वरी और कामेश्वर का ध्यान करें।

प्यारे साधको!

इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य जब संसार भाव में होता है तब उसकी काम ऊर्जा अधोमुख होता है और जब ध्यान के द्वारा ज्ञानभाव में होता है तब शुद्ध प्रज्ञा कामेश्वरी और कामेश्वर का ध्यान करता है। अर्थात् तब मनुष्य की वासना का उर्ध्वीकरण हो जाता है। वह नर अथवा नारी काम की इश्वर या ईश्वरी बन जाते हैं। अर्थात् वे विषय वासना के गुलाम नहीं रहते, उनकी विषय वासना सहज ही गिर जाती है।

दोस्तो, सहस्रार में कामेश्वरी और कामेश्वर का ध्यान करने का अर्थ बहुत स्पष्ट है। इसे जरा वैज्ञानिक ढंग से समझिए। प्रत्येक मनुष्य के भीतर नर और नारी दोनों के गुण विद्यमान रहते हैं परंतु दोनों के सम्यक समनवय का दिव्य अनुभव उसे ध्यान में होता है। जो पूर्णता की सही अनुभूति है। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ तत्व पिता की ओर से और कुछ माता की ओर से प्राप्त होते हैं। इसलिए मैं कह रही हूँ कि प्रत्येक नर – नारी स्त्री-पुरुष का समन्वय है परंतु ध्यान के अभाव में और मात्र शरीर बोध के कारण वह उस परम सत्य की अनुभूति नहीं कर सकता।

दोस्तो, षट्चक्र निरूपण ग्रंथ भी कुण्डलिनी का उत्थान करने के पक्ष में नहीं है परंतु ध्यान द्वारा उस परम शक्ति का चिंतन करने को कहता है।

प्यारे साधको!

कुण्डलिनी जागरण की विधि को लय योग भी कहते हैं। जहाँ

मन, बुद्ध, देह आदि का ज्ञान में लय हो जाता है और ध्यानी ध्यान शक्ति से परम प्रकाश स्वरूप पुरुष के साथ समत्व को प्राप्त करता है। इस लय योग में साधक सदा आनंद में रहता है, शांत और प्रसन्न रहता है। उसे किसी संगी या संगिनी की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि विद्युत प्रवाह रूपिणी, सर्व सौन्दर्य शालिनी, सर्वाकर्षा, सर्वसुखदायिनी, कुण्डलिनी शक्ति उसकी परम संगिनी बन जाती है। ऐसे साधक को दिव्य साधक कहते हैं और ऐसे सिद्ध पुरुष या नारी अगर अपनी पत्नी या पति के साथ भी रहते हैं तो भी वे वीर साधक कहलाते हैं।

दोस्तो, मैंने यह बात इसलिए बताई कि कुण्डलिनी जाग्रत हो जाने से पति-त्याग या पत्नी-त्याग जरूरी नहीं है। ज्ञानोपलब्धि स्वीकार को जन्म देती है, पलायन को नहीं। पलायन तो अज्ञान की अवस्था में, क्रोध की अवस्था में, या काम की अवस्था में होता है। ज्ञानावस्था में तो केवल साक्षी भाव रहता है। हाँ, इस अवस्था में लौकिक भाव हावी नहीं रह सकते।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के अनुसार कुण्डलिनी नचिकेत नाम का अग्नि है। जो इसका अनुभव कर लेता है उसकी सारी वासनाएं जलकर नष्ट हो जाती हैं। ऐसे साधक का शरीर योगाग्नि या ध्यानाग्निमय हो जाता है। ज्ञानदृष्टि से जन्म-मृत्यु, जरा और दुःखों के पार चला जाता है।

चैनिक योगदीपिका में कुण्डलिनी शक्ति को स्पिरिटफायर कहा है और पश्चिम में इस शक्ति को सरपेन्ट फायर भी कहते हैं। मेडम ब्लेवेट्सकी इसे कोस्मिक इलेक्ट्रेसिटी अर्थात् विश्वव्यापी विद्युत शक्ति कहती हैं। द वॉयस ऑफ द सायलेन्स के पृष्ठ २७ पर वे लिखती हैं कि

योगाभ्यासी यति के शरीर में वह चक्राकार चलती है और उसकी शक्ति को बढ़ाती है। यह एक विद्युतमय गुप्त शक्ति है। यह एक ऐसी शक्ति है कि जो सैन्द्रिय और निरेन्द्रिय सृष्ट पदार्थ के मूल में है। वे आगे कहती हैं—

light travels at the rate of 18500 miles per second but kundilini travels at 345000 miles per second.

ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्।

तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम्॥

कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिणीम्।

तामूत्थाप्य महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः।

प्यारे साधको!

कुण्डलिनी जागरण के बाद साधक का साभी कर्म में प्रवेश होता है। जिसे एक्शन इन इनेक्शन (अकर्म में कर्म) कह सकते हैं। इस अवस्था में साधक कर्म करते हुए भी कर्म के बंधनों से पार होता है। यह एक वास्तविक निरद्वंद्वता है। इसे

union of the opposites on a higher level of consciousness.

अर्थात् चैतन्य की उच्चतम अवस्थाओं के परस्पर विरोधों का मिलन कह सकते हैं। ऐसा सांख्यशास्त्रियों का मानना है। इस अवस्था को छांदोग्य उपनिषद् की भाषा में कहें तो – जीव इस शरीर से ऊपर उठकर परम ज्योति को प्राप्त करके अपने स्वरूप में स्थिर होता है। ऐसे साधक के लिए फिर दुनियाँ के अभिप्राय कुछ भी मायना नहीं रखते और उन्हें स्वर्ग या मोक्ष की गरज भी नहीं रहती।

आवारा पागल मतवाला ये तखल्लुस पाने वाला

दुनिया से न डरने वाला ज़िंदा ही ज़न्नत पाता है।

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-12) / 27



विभाग : 19

मुद्राओं पर आधारित ध्यान विधियाँ

भूमिका.....

प्यारे साधको!

धर्म-अध्यात्म और विज्ञान परस्पर के पूरक हैं। शरीर का स्नायु तंत्र इतना सूक्ष्म और नाज़ुक है कि विज्ञान अभी तो उस पर रिसर्च-प्रयोग कर रहा है। उन प्रयोगों से बहुत कम जान पाए हैं और काफी सारा जानना बाकी है। परंतु भारत के सिद्ध, योगी और ध्यानी कुछ खास मुद्राओं के द्वारा शरीर के विशेष ज्ञानतंतुओं से आध्यात्मिक लाभ उठाकर स्वास्थ्य को प्राप्त करने का राज़ हज़ारों वर्ष पहले जान चुके थे। भारत के सिद्धों ने केवल उन मुद्राओं की अनुभूति के लिए अपना पूरा-पूरा जीवन दे दिया था। उनमें से कुछ अनुभूतियाँ तंत्र-शास्त्रों के द्वारा, कुछ शिष्यों के द्वारा और कुछ श्रुति और स्मृति साहित्य द्वारा आज हमको प्राप्त हो रही हैं।

वैसे तो अनेक अनेक प्रकार की योग मुद्राएं हैं। जिनमें से कुछ मुद्राओं का रिचुअल में प्रयोग होता है (कर्म-काण्ड के दौरान), और कुछ मुद्राओं का स्परिच्यु पाथ (आध्यात्मिक) में प्रयोग होता है।

यहाँ मैं कुछ खास ध्यान विधियाँ और उसमें भी विशेष करके दक्षिण तंत्र-मार्ग की कुछ ध्यान विधियों में जो प्रमुख मुद्राएं हैं, उन मुद्राओं पर बात करने जा रही हूँ।

दक्षिण तंत्र अंतर्गत विज्ञान भैरव तंत्र में शिव पार्वती को प्रमुख पांच तांत्रिक मुद्राएं बताते हुए उन मुद्राओं के आधार पर ध्यानस्थ होने को कहते हैं। उनके प्रभाव का भी वर्णन करते हैं। जिसे हम एक एक करके समझने की कोशिश करेंगे।

धारणा - 165

करङ्किण्या ध्यान

ध्यान सूक्ति - 165

जग कंकाल रूप जब जानो, करङ्किणी तब सिद्ध भई मानो ॥

ध्यान विधि - 165

कचङ्किणी मुद्रा में स्थिर
होकर जगत के मिथ्यत्व
को समझ लो ।



क रङ्गिणी मुद्रा से
जब स्वयं की इन्द्रियाँ और
इसके साथ साथ जुड़ा हुआ
सबकुछ अदृश्य हो जाता है
तब तंत्र की भाषा में कहा
जाता है कि साधक विश्व
चेतना की महागोद में समा
गया। ध्यानोपलब्धि के कारण
स्वुद वे अस्तित्व का
विस्मरण हो गया। घड़ीभर
के लिए साधक का शरीर
से तदात्म्य छूट गया और
इस प्रकार वह अशरीर बन
गया। जब स्वुद रवो गया तो
सारा जगत भी रवो गया
समझो।

प्यारे साधको!

सबसे पहले तो करङ्क का अर्थ समझ लीजिए। करङ्क का अर्थ है अस्थि-पिंजर। शिव कहते हैं कि सारे जगत को प्राणहीन और नामहीन करङ्क के समान देखने वाली मुद्रा करङ्किणी है। इस मुद्रा में स्थिर होने वाले साधक का पराशक्ति से अभेद स्थापित होता है।

प्यारे साधको!

तंत्र अंतर्गत कुछ विधियां सीधी सपाट और सरल लगती हैं तो कुछ विधियाँ विचित्र, विशिष्ट और आश्चर्यकारी। परंतु आपको अगर ध्यान में रस है, आपका ध्येय ध्यान है, आपका परमलक्ष्य चिदानंदघन में एकचित्त होना का है तो उन विधियों की विचित्रताओं को नहीं देखना है। आपको इतना ही देखना है कि आप कौन सी विधि के लिए हैं? अथवा कौन सी विधि आपके लिए उचित है? क्योंकि विधि के साथ जबतक आपका तदात्म्य नहीं होगा तब तक परम प्रकाश के साथ भी नहीं हो सकता। न ही आप पूर्ण आनंद की अनुभूति कर पाएंगे।

मैं बार बार कहती हूँ कि ध्यान प्रेम जैसा है आप जिसे प्रेम

करते हैं वह व्यक्ति अच्छा लगता है। उसके संदर्भ में सबकुछ अच्छा लगता है। क्योंकि उसे आपके हृदय ने स्वीकार कर लिया है। भावजगत ने स्वीकार कर लिया है। इसी तरह ध्यान की जो विधि आपको पसंद आती है उसके प्रति भी आपका भावजगत सक्रिय होने लगता है। आपका भावजगत उस विधि को समर्पित होने लगता है। आपकी सारी ऊर्जा उस विधि की ओर बहने लगती है। अचानक आप किसी अद्वितीय और शब्दातीत घटना को उपलब्ध हो जाते हो।

मनुष्य अनेक अनेक प्रकार की प्रकृति से घिरा हुआ है। अपनी प्रकृति के अनुसार वह ध्यान मुद्रा को पसंद करता है। शारीरिक मुद्राएं मनुष्य का स्नायुतंत्र और ज्ञानतंतुओं के साथ काम करती हैं और ध्यान मुद्राएं सीधा चित्त जगत पर प्रभाव डालती हैं।

कुछ लोगों को आनंद की मुद्राएं पसंद आती हैं तो कुछ लोगों को शोक मुद्रा। कुछ लोगों को गीत संगीत से भरपूर विधियाँ आकर्षित करती हैं तो कुछ लोगों को करङ्किणी जैसी विशिष्ट और विचित्र मुद्राएं।

साधक आपनी प्रकृति के अनुसार विधि पसंद करता है। इसीलिए शिव ने अनेक अनेक प्रकार की विधियाँ बताई हैं। अपनी प्रकृति को, हृदय को अथवा चित्त को जो विधि ना जचे उसे जल्दी ही छोड़ देना। परंतु बिना अनुभव किए किसी भी विधि के बारे में अभिप्राय देने की गलती मत करना। कुछ लोगों को जो बातें खुद को पसंद नहीं हैं, ऐसी बातों पर जल्दी नकारात्मक अभिप्राय देने की अथवा कटु आलोचना करने की आदत होती है। कुछ लोग अपनी पसंद की विधि दूसरों पर थोपने का प्रयास करते हैं। परंतु ऐसा मत करना।

कोई भी समझदार आदमी ध्यान जैसी श्रेष्ठ विधियों में बिना

सोचे समझे अभिप्राय देगा ही नहीं। मैं कहती हूँ कि ज्यादा से ज्यादा आप अपनी अनुभूति बता सकते हो। वह भी किसी जिज्ञासू के पूछे जाने पर। अथवा आप अपने सहधर्मी के साथ अपने आनंद को बांटने के लिए अनुभव की चर्चा कर सकते हैं। परंतु विधि अच्छी है या बुरी ऐसा कहने की गलती मत करना। क्योंकि आपके लिए जो विधि असंभव है वह अन्य के लिए रुचिकर हो सकती है। इसका आधार साधक की क्षमता पर है।

खैर! इतनी भूमिका बांधना मेरे लिए अनिवार्य था। ताकि आप तांत्रिक मुद्राओं में से गुजर सकו या न गुजर सकו यह बात अलग है परंतु नासमझी में न रहो। जो विधि आपको नहीं जम रही है। उसे छोड़ दो।

मैं तो कहूंगी कि आपकी नापसंद विधि भी किसी और साधक को पसंद आ रही है तो उसे प्रोत्साहित करो उस विधि की गहराईयों में उतरने के लिए।

प्यारे साधको!

मुझे बात करनी है करङ्किणी मुद्रा की। सबसे पहले तो यह समझ लो कि मुद्रा का अर्थ केवल शरीर के अंगों की खास आकृतियाँ बनाना नहीं है। ध्यान मुद्राओं के साथ पुरा शरीर विज्ञान और आध्यत्मिक विज्ञान जुड़ा है। सत्यनारायण की कथा आदि में आने वाले पुरोहित एक मिनट में धेनु मुद्रा, कुर्म मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, शंख मुद्रा आदि की अकृतियाँ हाथ और अंगुलियों से कर देते हैं। लोग बड़े भक्तिभाव से सबकुछ देखते रहते हैं। परंतु ऐसी घटना पर आपने कभी पूछा, आपने कभी उसकी वैज्ञानिकता जानने की कोशिश की? उन्होंने आपको उन मुद्राओं

के पीछे के वैज्ञानिक महिमा बताई। अथवा मुद्राओं का गूढ़ार्थ और धार्मिक महिमा समझाई; ये सब क्यों कर रहे हैं?

प्यारे साधको!

अब ज़रा ध्यान दीजिए। कोई जानकार पुरोहित थोड़ा बहुत अर्थ बता दे तो ठीक है बाकी तो आपको ऐसा ही जवाब मिलेगा कि यह सब कर्मकांड का एक भाग है। हमारे आचार्य कर रहे थे, उनके आचार्य कर रहे थे, उनके आचार्य कर रहे थे; इसलिए हम कर रहे हैं। ये आकृतियाँ बनाना अब एक परंपरा बन गई है।

प्यारे साधको!

किसी भी विधि विधान में से जब विज्ञान खो जाता है, उसकी आध्यात्मिक समझ लुप्त हो जाती है और वह केवल एक धार्मिक परंपरा बनकर रह जाती है तब मेरी दृष्टि से ऐसा होना या करना निरर्थक है।

उन आकृतियों से अथवा मुद्राओं से कुछ सूक्ष्म लाभ होता भी है तो भी जब तक आपकी पूरी पूरी समझ और भाव जगत उसके साथ नहीं है तो वे आकृतियाँ कम फलदायी होंगी।

शिव कहते हैं कि तंत्र मुद्राओं के द्वारा पराशक्ति की अनुभूति कर लो। कैसे? ज़रा समझने की कोशिश करनी है।

प्यारे साधको!

करङ्किणी मुद्रा में साधक जब प्रवेश करता है तब उसे तीव्र भाव करना है कि यह सारा जगत संज्ञा शून्य है। अर्थात् जिन जिन चीज़ों को हम जिस जिस नाम से पुकारते हैं, वह सब निरर्थक है। उसमें

कहीं भी कोई भी वास्तविकता नहीं है। वहाँ अस्थि-पिंजर से ज्यादा कुछ भी नहीं है। आपके मन में प्रश्न उठेगा कि चलते फिरते, नाचते गाते विश्व को अस्थि-पिंजर क्यों मान लेना ?

दोस्तो ! यह एक विधि है। वह ढंग से समझने के लिए होती है। विधि में उतरकर ही सही जवाब पाया जा सकता है। उसमें उतरकर ही उसका परिणाम पाया जाता है। फिर सारे प्रश्नों का समाधान हो जाता है। परंतु जो व्यक्ति पहले से ही तर्क-कुतर्क या निरर्थक प्रश्न उठाते हैं ऐसे लोग इन विधियों के लिए नहीं हैं। ऐसे लोगों को ध्यान नहीं करना है परंतु ध्यान के बारे में बहुत कुछ जान लेना है। मैं कहती हूँ कि ध्यान अनुभव करने के लिए हैं। बाहरी जानकारी के लिए नहीं।

प्यारे साधको !

ध्यान मानसिक शारीरिक अथवा बौद्धिक स्तर पर कभी नहीं हो सकता। ध्यान के लिए तो अंतःस्तल में उतरना है। भीतर की गहराईयों में ध्यान का उदय होता है। मस्तिष्क में नहीं। मस्तिष्क तो केवल ध्यान के द्वारा पाई हुई शांति का अनुभव करता है। ध्यान के कारण शरीर विशेष शांति और स्थिरता का अनुभव करता है। ध्यान में मन तो अदृश्य ही हो जाता है।

तांत्रिक ध्यान साधना मन के द्वारा मन को अदृश्य करने की कला है। उन चित्र विचित्र विधियों से घबराना नहीं है। यह कोई जादू टोना या भूत-प्रेत भगाने का मार्ग नहीं है। न भूत-प्रेत की साधना है। यह तो शिव द्वारा पार्वती को विश्व कल्याण के लिए बताया गया एक महामार्ग है, मोक्षमार्ग है। उस मोक्ष का मनुष्य जीते जी अनुभव कर सकता है। इसलिए पूरा पूरा धैर्य रखो, जल्दी अभिप्राय मत दो, विधि में

से गुजरो, विधि के महत्व को समझो, उसकी गहनता को समझो, उसका अनुभव करो; फिर स्वयं ही मौन हो जाओगे, अभिप्राय और संशय खो जाएंगे; सिर्फ अनुभूति बचेगी।

आपको पता है करङ्किणी मुद्रा अर्थात् पूरे विश्व को कंकाल के रूप में देखते रहने की साधना। यह मुद्रा आपके पंचमहाभौतिक शरीर को पृथ्वी पर रहते हुए भी महा-आकाश में विलीन कर देती है। इस मुद्रा के साधको को तांत्रिकों ने ज्ञान सिद्ध कहा है।

करङ्क का एक अर्थ शरीर भी है। इस शरीर के कारण जिसका अनुभव होता है वह है करङ्किणी मुद्रा।

तंत्रालोक और महार्थमंजरी आदि ग्रंथों में क्रमदर्शन का वर्णन मिलता है।

प्यारे साधको!

यह क्रमदर्शन क्या है? आपके लिए यह नया शब्द है। मैंने कई बार कहा है कि मैं ध्यान विधियों को कितनी भी सरल और सपाट पद्धति से बताना चाहूँ तो भी कुछ शब्दावली तो अनिवार्य रूप से लेनी ही पड़ती है। हर क्षेत्र की अपनी अपनी एक विशिष्ट शब्दावली होती है। रसोईघर की शब्दावली का इन्जीनियर को पता नहीं होता और इन्जीनियर की शब्दावली का रसोई को। डॉक्टर को वकालत की शब्दावली का पता नहीं होता और वकील को डॉक्टरी का। ठीक ऐसे ही अध्यात्म शास्त्र की विविध शाखाओं की शब्दावली भी अलग अलग है। यहाँ खास स्थान के लिए अथवा विशेष बात समझाने के लिए मुझे भी अनिवार्य रूप से योग और तंत्र-शास्त्र के कुछ कठिन शब्दों को रखना पड़ा है। उसके स्थान पर अन्य कोई शब्द रखना विषय के साथ अन्याय

जैसा हो जाता है।

क्रमदर्शन को कालीनय भी कहते हैं। जिसमें शाक्त उपाय (शक्ति मार्गीय तंत्र) का सहारा लिया गया है। अगर आपको इस विषय में विशेष रुचि है तो आप डॉक्टर कांतचंद्र पांडे और उनके शिष्य डॉ. नवजीवन रस्तोगी को पढ़ सकते हैं। यहाँ मुझे तो एक ही बात का विशेष ध्यान रखना है और एक ही बात पर विशेष ज़ोर देना है कि साधक तांत्रिक मुद्रा विधि को समझ ले और ध्यान में उत्सुक हो। आप तंत्र शास्त्र के कठिन शब्दों में उलझ न जाओ इसलिए भी मुझे सजग रहना है। खैर!

सांख्यकारिका के अनुसार करङ्किणी मुद्रा को लेकर दो सुंदर श्लोक मिलते हैं -

करास्त्रयोदशाकाराः सर्वाक्षक्षोभवृत्तयः।

अङ्कं तु निर्निकेतायाः संविदो देहविस्तरः॥

एतत्कराङ्कमाख्यातं तस्य ग्रासादनावृतम्।

निष्कराङ्कं समुद्दिष्टं निरालम्बं परं पदम्॥

अर्थात् “क” उन (“करणं त्रयोदशविधं” (३२) संख्यकारिका के इस श्लोक में पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और तीन अन्तःकरण इन सबको मिलाकर तेरह करण प्रतिपादित हैं। यह त्रयोदशविध करम ही क्षोभ के कारण हैं।) तेरह आकारों को कहते हैं, जो कभी इन्द्रियों में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। “अंक” उस निर्निकेत (निराधार/निर्विषय) संवित् स्वरूपिणी भगवती के विस्तार को, विराट् स्वरूप को कहते हैं। अपने निर्विकल्प, निष्कल स्वरूप में जब यह संवित् स्वरूपिणी भगवती इस करांक को, अर्थात् प्रमाण-प्रमेय स्वरूप सारे जगत् को अपने सकल

स्वरूप के साथ समेट लेती है, तो यह उसका निष्करांक स्वरूप कहलाता है। इस निष्करांक स्वरूप को न तो कोई छिपा सकता है और न कोई अपने स्वरूप के सिवाय इसका आश्रय ही बन सकता है। इसका यह निरावरण और निरालम्ब स्वरूप ही वास्तविक है।

करङ्किणी मुद्रा में “क” से १३ अक्षरों से संबंध है।

प्यारे साधको!

मैंने ध्यान विज्ञान नाम के ग्रंथ में बताया था कि करण शब्द का अर्थ है इन्द्रियाँ और वहाँ करण ध्यान की बात भी की थी। परंतु यहाँ एक अलग प्रकार की मुद्रा से पराशक्ति में प्रवेश करना है। सांख्यकारिका १३ प्रकार के करण बताती है। जिसमें पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय और तीन अन्तःकरण (जाग्रत मन, अर्ध सुशुप्त, और सुशुप्त मन) का समावेश होता है।

प्यारे भक्तो!

यह १३ करण ही मनुष्य के भीतर क्षोभ उत्पन्न करते हैं और संसार का कारण हैं।

अंक का अर्थ है, गोद। किसकी गोद? दोस्तो! हम सब पैदा होने के पहले नौ महीना माता की गोद में थे। और पैदा होने के बाद महामाता की गोद में हैं। तंत्र शास्त्र का मत है कि यहाँ पराशक्ति निरनिकेत (जिसका कहीं भी दृश्यमान घर नहीं होने पर भी समग्र ब्रह्मांड जिसका घर है), महाविद्या स्वरूपिणी भगवती के विस्तार को कहा है।

प्यारे साधको!

जब साधक करङ्किणी मुद्रा में पूर्ण रूप से प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् निर्विकल्पावस्था में प्रवेश कर लेता है और उसका मन जब

संकल्प विकल्प से पर हो जाता है तब वह पराशक्ति की गोद में पूर्ण रूप से समा जाता है। अर्थात् उस अदृश्य शक्ति से उसका तदात्म्य हो जाता है।

जब सकल स्वरूप एक महाचेतना में समाविष्ट हो जाता है तब शक्ति कराङ्क को (इन्द्रियग्राम रूपी साधक का शरीर और ऐसा ही अन्य सबकुछ) अपने में समेट लेती है। अर्थात् साधक का मन जैसे ही करङ्किणी मुद्रा से अदृश्य हो जाता है तब तुरंत उसके लिए समग्र विश्व के कंकाल (चलते फिरते अस्थि-पिंजर) अदृश्य हो जाते हैं क्योंकि दृश्य और अदृश्य सबका संकल्प विकल्प करने वाला तो मन ही है। मन गया तो सबकुछ गया। पुराने संत कहा करते थे कि *आप मुआ फिर दुनिया डूबी*। यहाँ लौकिक मृत्यु की बात नहीं है परंतु ध्यान में घटित होने वाली महामृत्यु की बात है।

प्यारे साधको!

करङ्किणी मुद्रा से जब स्वयं की इन्द्रियाँ और इसके साथ साथ जुड़ा हुआ सबकुछ अदृश्य हो जाता है तब तंत्र की भाषा में कहा जाता है कि साधक विश्व चेतना की महागोद में समा गया। ध्यानोपलब्धि के कारण खुद के अस्तित्व का विस्मरण हो गया। घड़ीभर के लिए साधक का शरीर से तदात्म्य छूट गया और इस प्रकार वह अशरीर बन गया। जब खुद खो गया तो सारा जगत भी खो गया समझो।

मैंने बचपन में एक शैव मार्गीय बाबा को इस मुद्रा में घंटों तक बैठे देखा था। लोग उन्हें पागल या धुनी कहते थे। कभी कभार ही किसी के साथ बोलते थे। मैं उनकी मढी पर जाया करती थी। एक बार मेरे द्वारा जिज्ञासा से उनकी अवस्था के बारे में प्रश्न पूछने पर उन्होंने मुझे

बताया था कि बेटी, मैं जो मुद्रा बनाकर बैठता हूँ वह कोई मेरा पागलपन नहीं है परंतु वह करङ्किणी मुद्रा है। इस देह कंकाल और जगत के कंकालों के दृश्य तथा भाव से ऊपर उठकर निरकंकाल भाव की कल्पना में मैं खोया रहता हूँ। जिससे मैं बाहर से शांत और भीतर से आनंदित रहता हूँ। लोग मुझे पागल कहें तो अच्छा है। मुझे पागल समझकर वे लोग मुझसे दूर रहते हैं। जिससे मुझे ज्यादा एकांत मिलता है और मैं साधना में विशेष लीन रह सकता हूँ। ज्यादा लोगों की आवन-जावन से साधना में विक्षेप होता है।

प्यारे साधको!

उस वक्त मैं बहुत छोटी थी। परंतु उस संत का मुझपर अनुग्रह समझो कि वात्सल्य। किसी के भी साथ बात नहीं करने वाले महात्मा ने उस उम्र में मुझे इस मुद्रा के बारे में कुछ बता दिया था। जो वर्षों के बाद फिर से मेरे सामने आया और एक अर्थ में ध्यान मेरा जीवन बन गया।

फिर पच्चीस साल की उम्र में एक तंत्र ग्रंथ में मुझे निष्कराङ्क शब्द मिला और वह बाबा मेरे स्मृति पट पर उभर आए। आज ये सारी बातें मेरे द्वारा जब ब्रह्म जिज्ञासुओं के पास एक ध्यानग्रंथ के रूप में जा रही हैं तब उस बाबा की याद से रोमांचित होकर मैं गद्गदित हो रही हूँ। लगता है कि वह बाबा यहीं-कहीं मेरे आस-पास फिर से प्रगट हो रहे हैं।

प्यारे साधको!

आपने शायद मेहर बाबा का नाम भी सुना होगा। आचार्य रजनीश आदि कई लोगों ने मेहर बाबा का जिक्र किया है। मनोचिकित्सको ने उनपर घंटों तक प्रयोग करने के बाद कहा था कि इस आदमी के बारे

में, उसके मन के बारे में हम कुछ भी नहीं कह सकते क्योंकि उसके पास मन है ही नहीं। ये मन के पार चले गए हैं।

अध्यात्मिकता के अभाव में कभी कभी कुछ डॉक्टर ऐसे सिद्धों को अबनोर्मल भी बता देते हैं। परंतु ऐसा नहीं होता है। मैंने सुना है कि मेहर बाबा करङ्किणी मुद्रा के अभ्यास के द्वारा मन के पार जा चुके थे। तंत्र स्पष्ट कहता है कि निषकराङ्ग स्वरूप को न तो कोई छिपा सकता है और न कोई अपने स्वरूप के सिवाय इसका आश्रय बन सकता है। यह निषकराङ्ग स्वरूप आलंबन से रहित है। यह निरालंब और निरावरण स्वरूप ही वास्तविक हैं।

प्यारे साधको!

तांत्रिक मुद्राओं में कई रहस्य छिपे हैं। तंत्र को नहीं जानने वाले लोगों के लिए ये सारी बातें आश्चर्यजनक अथवा झूठी लगती हैं क्योंकि औसत आदमी मन के साथ ही जाता है और मन के साथ ही जीना चाहते हैं। तो कैसे जानेगा मन के पार जाने की अवस्था को?

प्यारे साधको!

अब फिर से आईए विधि की ओर। करङ्किणी मुद्रा में साधक को खुली आंख से पूरे विश्व में कंकाल की कल्पना करनी है। कंकाल का अर्थ है अस्थि पिंजर। इसका अर्थ यह नहीं करना कि आप विश्व में केवल आस्थि-पिंजर ही अस्थि-पिंजर की कल्पना करें। परंतु अर्थ यह लगाना है कि विश्व को निसार समझकर शरीर से ऊपर उठ जाना है। अस्थि-पिंजरो में कुछ भी नहीं होता। न माया, न मोह, न आसक्ति। बस, वैसे ही जगत को देखना है और अपने शरीर से आरंभ करना है।

स्वयं में जब केवल अस्थि-पिंजर को देखेंगे तो फिर प्रश्न

उठेगा कि चेतना का क्या? दोस्तो, आपकी चेतना महाचेतना के साथ तदाकार होने लगेगी, शक्ति परमशक्ति में विलीन होने लगेगी। जिस तरह मयूर के अंडे के रस में, मयूर के शरीर में भविष्य में प्रगट होने वाले सभी रंगरूप अदृश्य होने पर भी मौजूद जरूर है। इसी तरह महा-आकाश में प्रकाशित महाशक्ति में यह समग्र विश्व विद्यमान है। तो इस महाशक्ति में ही विलीन क्यों न रहें।?

तंत्र कहता है कि सभी सर्वात्मक हैं अर्थात् नए उत्पन्न हुए पदार्थ में पुराना पदार्थ मौजूद रहता है। जैसे कि कुम्भ में मिट्टी, गहने में स्वर्ण, बीज में वृक्ष। इतना ही नहीं परंतु विश्व के सारे पदार्थ एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए हैं। इसीलिए तंत्र कहता है कि विश्व के सभी पदार्थ सर्वात्मक हैं और यह सारा खिलवाड़ भैरव का ही है।

मूलतः तो यह सारा विश्व परमेश्वर की स्वातंत्र्य शक्ति का ही विलास है। ऐसा समझकर मोहक शरीर को करङ्किणी मुद्रा के द्वारा कंकाल मात्र समझकर ईश्वर की स्फूर्तता शक्ति में अपनी शक्ति को विलीन करना है। योगी जगत में दिखाई देने वाली सभी चीजों को दर्पण का प्रतिबिम्ब मानकर उनके मोह से मुक्त रहते हैं। पराशक्ति की विशिष्ट शक्ति के कारण जगत में शरीर आदि विविध रंगरूप आभासित होते रहते हैं। परंतु ध्यानी साधना के बल पर और सत्य की समझ द्वारा स्थूलतर को स्थूल में, स्थूल को सूक्ष्म में और सूक्ष्म को अतिसूक्ष्म में उत्तरोत्तर विलीन कर देते हैं। अर्थात् सबका आकार फिर भी सबसे पर ऐसे नटराज शिवतत्त्व के रूप में स्वयं को विलीन कर देता है। साधक का चित्त जब उस परम प्रकाश में विलीन हो जाता है तब उसका मन पूर्णरूप से अदृश्य हो जाता है और साधक मनोमुक्ति की अवस्था को

प्राप्त कर लेता है।

प्यारे साधको!

सांख्यशास्त्र पंचतत्त्वों के संघटन से जीव की उत्पत्ति बताता है। भागवत आदि पुराण आस्तिकवाद के मूल आधार पर टिके हैं। वे कहते हैं कि चौबीस गुणों की प्रकृति में परमात्मा के प्रवेश के बाद जीव की उत्पत्ति हुई। डार्विन का उत्क्रांतिवाद अनुक्रम से जल के जंतु अमीबा और फिर जीव सृष्टि का एक से ज्यादा कोषों के रूप में उत्क्रांत होने का समर्थन करता है। तंत्र शास्त्र अन्तर्गत कौल तंत्र कहता है कि आकाश रूपी समुद्र में अकूल स्वरूपिणी शक्ति की लहरें उठती हैं। अस्तित्व की इस प्रथम अवस्था को पर नाम दिया है। यही शक्ति जब सूक्ष्म रूप में जब अवतरित होती है तब क्रमानुसार सृष्टि का विविध रूपों में विकसित होने की प्रक्रिया का प्रारंभ हो जाता है, जिसे “कुलपंचक” कहते हैं। परंतु तब वह घन अवस्था में होती है, जिसे “व्योमेश्वरी” कहते हैं। यह आद्यशक्ति सकल रूप में रममाण करती हुई “वृंदचक्र” पर्यंत तीनों लोको भासित होती है। वह स्वरूप शब्दातीत है। इसलिए उसका वर्णन करना संभव नहीं। ऐसी स्थिति में ऋषि-मुनि भी नेति-नेति कह देते हैं। फिर उस व्योमेश्वरी से खेचरी आदि की उत्पत्ति अदृश्य रूप से होती रहती है। जैसे कि मयूर के अंडे के रस में मयूर का रूप। फिर महाकाश रूपी समुद्र की प्रथम लहर को “वामेश्वरी” कहा है।

प्यारे साधको!

अब समझ लीजिए कि वृंदचक्र क्या है? अगर संक्षेप में समझाऊं तो एक बार फिर से कहूंगी कि सभी पदार्थ सर्वात्मक हैं। अर्थात् पदार्थ

की उत्पत्ति, स्थिति और लय, फिर उत्पत्ति फिर स्थिति और लय, फिर उत्पत्ति फिर स्थिति और लय । इस चक्र में पदार्थ रूपांतरित होता रहता है परंतु नष्ट नहीं होता। आज के पदार्थ शास्त्री भी इसी सिद्धांत को बताते हैं जो लाखों वर्ष पहले हमारे तंत्र शास्त्रियों ने बताया – हाँ, शब्दावली जरूर अलग है। संक्षेप में समग्र सृष्टि का अस्तित्व एक परिवर्तन-चक्र का परिणाम है। जो सतत चलते रहने पर भी नए पुराने पदार्थों का एक दूसरे से संबंध जुड़ा रहता है। वही है, वृंदचक्र।

तांत्रिक सिद्धांत के अनुसार, यह ब्रह्मांड नायिका – वामेश्वरी वृंदचक्र में प्रवेश करके पांच रूपों में अभिव्यक्त होती है। इसके स्वरूप शांभव, शाक्त, मेलाप, मंत्र और ज्ञान नाम से प्रसिद्ध हैं। फिर ये स्वरूप वामेशी, खेचरी, भूचरी, संहारिणी और रौद्री शक्ति से अधिष्ठित होकर चौसठ योगिनियों के रूप में परिणित होती हैं। ये चौसठ योगिनियाँ अपने विविध स्वरूपों का त्याग करके एक ही दशा धारण करके रौद्रेश्वरी के स्थान में निवास करती हैं। तब सभी प्राणियों के लिए मंगलकारी स्वरूप मंगलाभगवती प्रगट होती है। यही स्वरूप जब परावस्था में पहुंच जाता है तब साधक में सामरस्य भाव का जन्म होता है।

वृंदचक्र को वर्णों के अर्थ में जाना गया है। जैसे कि अकार आदि सोलह वर्ण स्वर कहलाते हैं। उन्हें सूक्ष्मरूप से जान लेने वाले को ज्ञानसिद्ध कहा है। ककार से लेकर मकार तक के पच्चीस व्यंजन के जानकार को मंत्रसिद्ध कहते हैं। स्वर और व्यंजनों से मिली हुई बारह मात्राएं अथवा प्रणव की कला के जानने वाले को मिलापसिद्ध कहते हैं। यकार से हकार तक आठ व्यंजन के जानकार शाक्तसिद्ध हैं। और आदि वर्ण अकार की अंबिका, वामा, जेष्ठा और रौद्री इन चार के जानकार

शाम्भवसिद्ध हैं।

आदि वर्ण अकार उपरोक्त चौसठ रूपों में ज्ञान, मंत्र, मेलाप, शाक्त और शांभवसिद्ध नाम से अभीहित होने वाले पदार्थों के भीतर वाचक रूप में मौजूद है। क्रमदर्शन में यह प्रक्रिया वृंदचक्र नाम से प्रसिद्ध है। इस वृंदचक्र की भावना करने से साधक की परावस्था प्रकाशित हो जाती है। परंतु मैं जिन मुद्राओं की बात कर रही हूँ उन मुद्राओं की साधना भी आपकी परावस्था प्रकाशित कर देती है।

प्यारे साधको!

बात निकली तो संक्षेप में करङ्किणी मुद्रा के सिवाय भी कुछ बता दिया।

अब मूल विधि की ओर आईए। सम्यक आसन लगाकर इस तरह से बैठिए कि भाव की तीव्रता में विक्षेप न हो। आसन की अव्यवस्था के कारण चित्त चंचल न हो। जिस आसन पर आप बैठे हो वह मृदु होना चाहिए। ताकि लंबे समय तक बैठ पाओ। उसपर तकिए के सहारे आधे शरीर को टिकाइए बाकी अंगों को खास करके हाथ-पैर को ढीले छोड़ दीजिए। इस तरह शांति से सुखासन में बैठकर तीव्र भाव करें कि मेरे शरीर सहित सारा जगत कंकाल मात्र है। अर्थात् नाम, रूप, गुण आदि निरर्थक है। उसमें सत्य कुछ भी नहीं। इस भाव में रोज कम से कम एक घंटा और ज्यादा से ज्यादा जितना हो सके इतना बने रहें। तीन साल की साधना के बाद आप धरती पर होते हुए भी अदृश्य हो जाएंगे और आपके लिए विश्व का अस्तित्व होने पर भी शून्य हो जाएगा। इस भावना की तीव्रतम अवस्था में अचानक आपका पराभाव में प्रवेश हो जाएगा।

शरीर और मन परम विश्रान्ति का अनुभव करेगा और आपके रोम रोम आनंदित हो जाएंगे। यही जीते-जी मोक्ष के क्षण हैं।



धारणा - 166

क्रोधना मुद्रा ध्यान

ध्यान सूक्ति - 166

क्रोधना मुद्रा धरि तरि जाओ, निरासक्त बनि शिव पद पाओ ॥

ध्यान विधि - 166

क्रोधना मुद्रा में स्थिर
होकर जगत के प्रति
निरासक्त भाव को जगा
लो ।



कि

सी सम्यक्

आसन पर बैठकर क्रोधमुद्रा में एक ही स्थान या बिन्दु पर देखते रहो। धीरे धीरे मन निर्विकल्प हो जाएगा। क्रोध में कुछ भी रुचिकर नहीं होता। याद रहे, इस ध्यान के दौरान आपकी रस रुचि कहीं भी नहीं होनी चाहिए। मुद्रा को अंतर से ही बनाओ। लंबे अभ्यास के साथ चित्त स्थिर होते ही विश्रान्ति दशा का अनुभव होगा।

प्यारे साधको!

यह क्रोधना मुद्रा क्या है? पहले यह समझ लीजिए।

क्रोध भरी मुद्रा बनाकर चित्त को एकाग्र करने की विधि है क्रोधना मुद्रा। यह एक तांत्रिक विधि है। कई सिद्धो ने इस मुद्रा से ध्यानस्थ होकर परागति को प्राप्त किया है। परंतु एक बात याद रहे – केवल शारीरिक हावभाव से मुद्रा पूर्ण हुई ऐसा नहीं मान लेना। उसके साथ साथ चित्त की एकाग्रता अत्यंत अनिवार्य है। आपको केवल कोई बाहरी अभिनय नहीं करना है परंतु मुद्रा में उतरना है। इस साधना को एक ध्यान पद्धति के रूप में लेना है। केवल बाहरी आकृतियाँ बना लेने से कुछ नहीं होगा। विधि को विधि की तरह समझना पड़ेगा।

प्यारे साधको!

क्रोधना मुद्रा को शिव ने क्यों बताया? इसके भी कारण हैं। क्रोध का मूल कामनाओं में है। मनुष्य का मन नई नई कामनाएं करता ही रहता है। मन हमेशा वासना के स्तर पर जीता है। मनुष्य अजाग्रति के कारण हमेशा मन के पक्ष में ही होता है और मन की वासनाएं पूरी करने

में लगा रहता है। परंतु भूल जाता है कि वासनाएं असीम हैं और शरीर की क्षमता सीमित है। ऐसी स्थिति में मनुष्य थक जाता है, ऊब जाता है। हारे, थके और फिर जागे तब तो अच्छा है क्योंकि हरा हुआ ही हरि की शरण में आता है। हर तरह से जिसका मन भर गया है या थक गया है, ऐसा मनुष्य योग आदि की सहायता से शांति पाना चाहता है। शांति का रास्ता ढूंढता है। उस रास्ते का नाम है ध्यान। परंतु अजाग्रत मनुष्य तो मरते दम तक कामनाओं को ढोता रहता है।

एक सेठ मर रहा था। बहुत धनवान था। उसने अपने मुनीम जी से पूछा कि तिजोरी में कितना धन है। मुनीम जी ने कहा कि सेठजी चिंता मत करो। इकहत्तर पीढ़ि सुख से जिए इतना धन है। आप सुख से प्रभु स्मरण करो और जीवन की अंतिम क्षणों को सुधार लो। परंतु सेठ रोने लगा। मुनीम ने सेठ के रोने का कारण पूछा। तो सेठ ने बताया कि मेरी बहत्तरवीं पीढ़ी का क्या होगा? ऐसी लालसा को शास्त्र मोघ आशा कहते हैं।

मोघ का अर्थ है कभी सफल न होने वाला। ऐसे लोगों का कोई इलाज नहीं है। अधूरी वासनाओं में से क्रोध अथवा दुःख पैदा होता है। दुनियां में जितनी भी हत्या, बलात्कार, अपराध और टंटे फ़साद – जो कुछ भी असमाजिक कृत्य घटते हैं, उनके पीछे कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप से कोई न कोई वासना अवश्य छिपी है।

इसीलिए भगवत गीता कहती है कि

कामात् क्रोध अभिजायते

गीता में कहा है इसलिए दुनियाँ में नहीं होने लगा। इस सत्य को याद रखना। लोग कहते हैं कि शास्त्र में लिखा है इसलिए सत्य है। परंतु

मैं कहती हूँ कि जो सत्य है वह शास्त्र में लिखा गया है।

काम से क्रोध पैदा होता है – ऐसा अगर गीता में नहीं लिखा होता तो भी यही सत्य है। हमारे मनीषियों ने हजारों हजारों मानव मन का अभ्यास करने के बाद शास्त्रों के लिए कलम उठाई है। शास्त्र मानव मन का प्रतिबिंब है। शास्त्र समाज का प्रतिबिंब है, समाज शास्त्र का प्रतिबिंब नहीं। समाज के अनुसार समय समय पर नए नए शास्त्रों की रचना हुई है। पहले समाज अस्तित्व में आया बाद में शास्त्र।

खैर! कहने का हेतु इतना ही है कि कामनाओं की अपूर्तता से क्रोध उत्पन्न होता है। तंत्र कहता है कि ज़हर को ज़हर ही मार सकता है। कांटा कांटे से ही निकल सकता है। लोहे को लोहा ही काट सकता है। जो जहाँ से उत्पन्न हुआ है उसके द्वारा ही उत्पत्ति स्थान को खत्म किया जा सकता है। काम से क्रोध उत्पन्न भी होता है और क्रोध से कामनाओं का नाश भी हो सकता है। परंतु मेरी दृष्टि से ऐसा क्रोध दुर्गुण नहीं परंतु परिशुद्ध क्रोध है। ऐसा क्रोध एक सजग क्रोध है। ऐसा क्रोध साधना बन जाता है।

एक पुराण प्रसिद्ध कथा पूरी दुनिया जानती है। शिव ने क्रोध से ही काम को जला दिया था। परंतु वह शिव का क्रोध था। इसका अर्थ यह नहीं है कि शिव काम के विरोध में हैं। अगर विरोध में होते तो न पार्वती से प्रेम होता, न विवाह करते, न संसार लीला रचाते। शिव विधेयक काम के विरोध में नहीं हैं परंतु विनाशक काम के विरोध में हैं। काम भाव का जगना कोई गलत नहीं है। उसमें तो सृष्टि का अस्तित्व है। परंतु काम का आप पर हावी होना खतरनाक है। सजगता के साथ काम में उतरना अपराध नहीं परंतु इन्द्रिय धर्म है। परंतु काम के द्वारा उत्तेजित

होकर बेहाशी में किसीपर बलात्कार कर देना यह दूषित काम है। जो काम दूषण पैदा करे ऐसे काम को नष्ट कर देना ही बेहतर है और वह नष्ट होता है क्रोध से। स्वयं शिव उसका प्रमाण हैं। ऐसे क्रोध में अन्य की रक्षा भी है और आत्मरक्षा। नष्ट होता है तो केवल दूषित मनोभव।

प्यारे साधको!

याद रहे, काम कोई व्यक्ति नहीं है। ज्यादातर लोग कथाओं में प्रयोजित रूपकों को नहीं समझ पाते हैं इसलिए गड़बड़ कर देते हैं। काम के अनेक रूप हैं। परिशुद्ध काम को गीता में कृष्ण स्वयं का स्वरूप कहते हैं। सम्यक संसार को चलाने वाला काम बिलकुल निंदनीय नहीं है। परिशुद्ध काम की भी निंदा करने वाला तथाकथित साधू-संत-महात्मा मेरी दृष्टि से या तो मूढ़ हैं अथवा दंभी।

खैर! मुझे बात क्रोधना मुद्रा की करनी है। इस मुद्रा को ध्यान विधि के रूप में बताना है।

किसी सम्यक आसन पर बैठकर क्रोधमुद्रा में एक ही स्थान या बिन्दु पर देखते रहो। धीरे धीरे मन निर्विकल्प हो जाएगा। क्रोध में कुछ भी रुचिकर नहीं होता। याद रहे, इस ध्यान के दौरान आपकी रस रुचि कहीं भी नहीं होनी चाहिए। मुद्रा को अंतर से ही बनाओ। लंबे अभ्यास के साथ चित्त स्थिर होते ही विश्रांति दशा का अनुभव होगा।

यह घटना तीन महीने से लेकर तीन वर्ष तक में कभी भी घट सकती है। रोज एक से तीन घंटे तक इस मुद्रा के साथ ध्यान में उतरते रहो। विश्रांत स्थिति का अनुभव होते ही उस विश्रांति में चित्त की एकाग्रता को बढ़ाने से मुद्रा सिद्ध हो जाएगी। इस स्थिति में मन परिलीन हो जाने से शांति बढ़ती जाएगी और अंत में साधक का मूल स्वरूप

अर्थात् शांतात्मा का प्रसन्न स्वरूप अभिव्यक्त होने लगेगा।

कामनाओं के कारण जब मन अस्वस्थ और अशांत रहे तो इस मुद्रा का आधार लेकर एकांत में आसन लगाकर ध्यानस्थ होकर लोहे से लोहे को काट दो और निर्विक्षेप, निरव, शांत और निरतिशय आनंद का अनुभव करो।





धारणा - 167

भैरवी मुद्रा ध्यान

ध्यान सूक्ति - 167

भैरवी मुद्रा शांतिदायक, सहज समाधी परम विधायक॥

ध्यान विधि - 167

शैवरी मुद्रा में उत्पन्न
सहज समाधि को प्राप्त
कर लो ।



वास्तव में आंखों का काम तो है आदमी को बचाना। परंतु आंखों की वजह से ही आदमी धोखा खा जाता है, गिरता है। ये कैसी दयनीय स्थिति है मनुष्य की! दोस्तो, जरा ध्यान से समझिए! आंख तो मात्र उपकरण है। उसके द्वारा भीतर भेजे गए दृश्यों से मनुष्य क्रिया-प्रतिक्रियाएं करता है। मन का क्रिया-प्रतिक्रिया शून्य हो जाना ही भैरव मुद्रा का परिणाम है।

प्यारे साधको!

नेत्र की शक्ति को एक स्थान पर स्थिर करना यह भैरव मुद्रा है। इसे कुछ लोग त्राटक भी कहते हैं परंतु त्राटक में सामान्य रूप से किसीको वश करने का उद्देश्य होता है। जबकि भैरवी मुद्रा का केवल ध्यान संबंधी उपयोग करने से साधक का परम शांति में प्रवेश हो जाता है।

शरीर की कोई सबसे चंचल इन्द्रिय है तो वह है आँख। नेत्र एक क्षण में एक साथ अनेक अनेक दृश्य देखते हैं। यह द्वार मन को विचलित करने का और शांत करने का दोनों काम कर सकता है। प्रवेश और निर्गमन के लिए द्वार तो एक ही होता है।

बंधन और मुक्ति दोनों के लिए इस देह में कई द्वार हैं। दस इन्द्रियाँ उपरांत मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा है। खैर! ध्यान विज्ञान नाम के ग्रंथ में मैंने इन्द्रियों का उपयोग करके जो जो ध्यान विधि हो सकती है, ये सब विस्तार से बताया है। यहाँ मुझे केवल भैरवी मुद्रा के संदर्भ में ही बात करनी है।

भैरवी भैरव की शक्ति है। यह कोई भयानक रूप नहीं है। अगर आप भैरव के शब्दार्थ में पढ़ेंगे तो कई प्रश्न खड़े हो जाएंगे। परंतु तंत्रशास्त्र के अनुसार योगात्मा की परम शक्ति है। आपने शिव की, बुद्ध की, महावीर आदि की प्रतिमा को कभी शांति और स्थिरता से देखा है? वह एक बारीक अवलोकन का विषय है। करीब करीब उन सबकी दृष्टि को स्थिर पाओगे। उस दृष्टि में एक गहनता और शांति का दर्शन होगा। विशेष रूप से शिव तो हमेशा भैरवी मुद्रा में ही होते हैं। नाक की नोंक पर अथवा किसी भी बिन्दु में नेत्रों की स्थिरता से मन एक ही दशा में स्थिर हो जाता है। मन के स्थिर होते ही साधक संकल्प विकल्प से पर हो जाता है। ये मुद्राएं अनुभव करने के लिए हैं। इनके विषय में विशेष वर्णन करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

यहाँ केवल दृष्टि को स्थिर करने की बात है। मेरे अनुभव से दृष्टि और चित्त का स्थिर होना समग्र जगत का स्थिर होना है।

प्यारे साधको!

आप आपकी दृष्टि के बारे में सजग नहीं हैं। दृष्टिवान लोग वास्तव में दुनियाँ में बहुत कम हैं। आंखें केवल दृश्य देख सकती हैं परंतु दृष्टि उसका सम्यक विश्लेषण करती है। दृष्टि के पास विवेक होता है।

प्यारे साधको!

आप दिन में कितने दृश्य देखते हो? कभी सोचा है आप देखने के विषय में बिल्कुल सजग नहीं हैं। दृश्यों को देखने की आंखों की आदत ने मन को इतना चंचल और दूषित कर रखा है कि वह स्वप्न में भी अनर्गल, अर्थहीन और श्रृंखलाहीन घटनाओं को देखता रहता है। ये

आंखों की आदत का परिणाम है। इस आदत की वजह से मनुष्य को स्वप्न में भी सुख नहीं है। और अगर सुख है तो भी वह उसे ठगने वाला है।

दोस्तो! आपकी जाग्रतावस्था भी तथाकथित है। वास्तविक रूप से आप जाग्रत नहीं हैं। आपकी तथाकथित जाग्रतावस्था में आपका मन इरादे के साथ न देखने जैसी चीजें भी देखता रहता है। आंखें तो सबके पास हैं परंतु मनुष्य को अगर वास्तविक दृष्टि मिल जाए तो उसकी आयु और स्वास्थ्य दोनों बढ़ सकते हैं। क्योंकि सम्यक दृष्टि के कारण आप आंखों को बचाना सीख लेंगे। जबकि सम्यक दृष्टि के अभाव में आंख के द्वारा देखे गए सारे दृश्य मन की ओर धकेल दिए जाते हैं। और उसपर मन ऊर्जा का व्यय करता रहता है। बेचारे नेत्रेन्द्रिय तो एक मेकेनिज़म की तरह वर्क कर रही है। इसमें उसका कोई दोष नहीं है। वास्तव में आप ही फालतू चीजों को देखना चाहते हैं। यहाँ आप का अर्थ है आपका मन अथवा अजाग्रत चेतना।

आपको पता है! दृश्य को देखने में आपकी कितनी ऊर्जा क्षीण होती है? मस्तिष्क के बाद अगर कोई इन्द्रिय विशेष ऊर्जा का व्यय कर रही है तो वह है नेत्रेन्द्रिय। आदमी बूढ़ा हो जाए तब तक कई बच्चों को चलना और बोलना सिखाता है परंतु आंखे तो खुद की होने पर भी ढंग से देखना नहीं सीखता है। कई बार रास्ता चूक जाता है तो कई बार रपट जाता है।

वास्तव में आंखों का काम तो है आदमी को बचाना। परंतु आंखों की वजह से ही आदमी धोखा खा जाता है, गिरता है। ये कैसी दयनीय स्थिति है मनुष्य की! दोस्तो, ज़रा ध्यान से समझिए! आंख तो

मात्र उपकरण है। उसके द्वारा भीतर भेजे गए दृश्यों से मनुष्य क्रिया-प्रतिक्रियाएं करता है। मन का क्रिया-प्रतिक्रिया शून्य हो जाना ही भैरव मुद्रा का परिणाम है।

भैरव मुद्रा के अभ्यास से मनुष्य में आंतरिक सजगता आती है। और चित्त स्थिर होता है। चित्त की स्थिरता के कारण वह परम शांति का अनुभव करता है।
प्यारे साधको!

अगर आपको चित्त की शांति आवश्यक लग रही है और भैरव मुद्रा ध्यान में लगाना अच्छा लग रहा है तो एक आसन पर स्थिर बैठकर अपनी दृष्टि को किसी एक बिन्दु पर स्थिर करो। धीरे धीरे मन की विचलितता अदृश्य हो जाएगी। आंखों की चंचलता कम होगी। सम्यक दर्शन की क्षमता बढ़ेगी। आप वास्तविक दृष्टि को प्राप्त कर पाएंगे और महाशांति को उपलब्ध हो जाएंगे।



धारणा - 168

लेलीहाना मुद्रा ध्यान

ध्यान सूक्ति - 168

मुद्रा लेलीहाना बलकारी, सर्व संहारक क्षमताकारी ॥

ध्यान विधि - 168

लेलीहाना मुद्रा में लीन
होकर स्वयं वही
सर्वशक्तिमानावस्था का
अनुभव कर लो ।



ध्यान मनुष्य

को सजगता प्रदान करता है। सजगता से वासनाएं क्षीण होने लगती हैं। और मनुष्य शांति और निर्भयता का अनुभव करता है। यह शांति और सजगता ध्यान की अनेकानेक विधियों द्वारा प्राप्त हो सकती है। जिनमें से एक ध्यान विधि है - लेलीहाना मुद्रा ध्यान।

प्यारे साधको!

लेलीहाना का अर्थ है, जो सबको चाट जाने में लगी हो ऐसी मुद्रा।

आपने कालीदेवी की फोटो देखी होगी। लेलीहाना की आकृति को समझने के लिए वह चित्र पर्याप्त है। उस फोटो के पीछे एक पुराण कथा छिपी है। रक्तबीज नाम का एक राक्षस था। उसने ऐसा वरदान प्राप्त किया था कि उसके रक्त की एक भी बूंद अगर पृथ्वी पर गिरे तो उससे असंख्य रक्तबीज पैदा हो जाएं। उस वरदान के कारण वह निर्भय और उदंड हो गया था उसका अहंकार और त्रास बढ़ता जा रहा था। देव, यक्ष, किन्नर, गंधर्व सब उससे त्रस्त थे। अंत में सब देवी की शरण में आते हैं और रक्तबीज से बचाने की प्रार्थना करते हैं। फिर जगदंबा अपनी अलौकिक शक्ति से तीन रूप धारण करती है। जिनमें से एक स्वरूप उस राक्षस का वध करता है और एक रूप लेलीहाना मुद्रा में है। जिसमें चंडिका अपने मुंह को फैलाकर और लंबी जिह्वा से रक्तबीज के रक्त को चाटने लगती है। और रक्तबीज के रक्त की एक

भी बूंद को धरती पर नहीं गिरने देती। इस तरह से रक्तबीज का वध करके जगदंबा संसार को निर्भय करती है।

प्यारे साधको!

पुराणों की कथाएं केवल रसप्रद नहीं परंतु उत्तम प्रेरणादायी होने के साथ साथ प्रतीकात्मक भी हैं। रक्तबीज अनंत वासना का प्रतीक है। जिसका कभी नाश नहीं होता। वासना के एक बीज में से अनेक अनेक वासनाएं उत्पन्न होती हैं। इस वासना से सब परेशना हैं। और सब मुक्त होना भी चाहते हैं। परंतु ध्यान में नहीं उतरना चाहते।

ध्यान मनुष्य को सजगता प्रदान करता है। सजगता से वासनाएं क्षीण होने लगती हैं। और मनुष्य शांति और निर्भयता का अनुभव करता है। यह शांति और सजगता ध्यान की अनेकानेक विधियों द्वारा प्राप्त हो सकती है। जिनमें से एक ध्यान विधि है – लेलीहाना मुद्रा ध्यान।

साधक अगर स्वयं को आध्यात्मिक रूप से विकसित करने के लिए लेलीहाना मुद्रा का सहारा लेकर ध्यान में प्रवेश करता है तो उसमें पराशक्ति का आविर्भाव होता है। और वह समग्र वासनाओं को भस्मीभूत कर सकता है।

धारणा - 169

खेचरी मुद्रा ध्यान

ध्यान सूक्ति - 169

खेचरी मुद्रा में जो राचे, महाकाश रूप शिव में बिराजे॥

ध्यान विधि - 169

आपकी चेतना को
आकाश में लीन करके
शिव रूप हो जाओ ।



मन की क्षमताएं सीमित हैं परंतु आत्मचेतना की क्षमता असीम। आपकी असीम चेतना जब असीम आकाश के साथ तद्वाक्य हो जाएगी तब आपकी और विश्व की पार्थिवता गिर पड़ेगी। शरीर और दुनिया में बस कम हो जाएगा। दिव्य में उड़ान शुरू हो जाएगी।

प्यारे साधको!

खुली आंखों के साथ दूर आकाश तक फैली हुई मुद्रा को तंत्र की भाषा में खेचरी मुद्रा कहते हैं। खेचरी मुद्रा शरीर की शक्ति, व्यापिनी आदि सूक्ष्म स्थानों में सदा विचरण करने वाली है। इस मुद्रा को साधने वाला साधक शांभव सिद्ध कहलाता है।

दोस्तो! यहाँ फिर से एक बार तांत्रिक शब्दावली आ गई है। इसे पहले समझ लीजिए। शक्ति और व्यापिनी का अर्थ क्या है? अगर आपने पढ़ा हो अथवा आपको याद हो तो मैंने ध्यान विज्ञान नामक ग्रंथ में तंत्र शास्त्र के अनुसार शरीर के प्रमुख बारह प्राणबिन्दु बताए थे। जो जन्माग्र, मूलाधार, कंद, नाभी, हृदय, कंठ, तालुमूल, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरंध्र, शक्ति व व्यापिनी हैं, उन बारह स्थानों में प्राणऊर्जा का संचार अविरत और विशेष रूप से होता रहता है।

ज्यादातर लोग ब्रह्मरंध्र तक के स्थानों को तो जानते हैं परंतु शक्ति और व्यापिनी केन्द्रों से परिचित नहीं हैं। तंत्र शास्त्र के अनुसार मनुष्य की शिखा (चोटी) में शक्ति का स्थान और उसके इर्द-गिर्द छः

फिट में व्यापिनी का स्थान है। जहाँ चेतना विशेष रूप से फैली हुई होती है।

विज्ञान भैरव तंत्र की सत्तावनवीं धारणा में खेचरी मुद्रा का उल्लेख इस प्रकार मिलता है -

मध्यजिह्वे स्फारितास्ये मध्ये निक्षिप्य चेतनाम्
होच्चारं मनसा कुर्वस्ततः शांते प्रलीयते ॥८०॥

अर्थ - अपने मुंह को फैलाकर जिह्वा को उलटकर ऊपर तालु प्रदेश में ले जाने से खेचरी मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में अपनी बुद्धि को स्थिर करके मन से स्वर रहित हकार का उच्चारण करने से साधक शांत अवस्था में लीन हो जाता है। अर्थात् उसका शांत स्वरूप अभिव्यक्त हो जाता है।

प्यारे साधको!

वैसे भी प्राणविदों के अनुसार प्राण की उच्छ्वास दशा में स्वाभाविक रूप से हकार का तथा निःस्वास दशा में सः का उच्चारण सहज ही होता रहता है। अर्थात् सकार के साथ प्राण बाहर निकलता है और हकार के साथ पुनः प्रविष्ट होता है। इसके अनुसार प्राण की स्वास-प्रश्वास प्रक्रिया में हंसः, सोहम - इस अजपा गायत्री का सहज ही दिन-रात बिना जपे ही मंत्र जाप चलता रहता है। परंतु खेचरी मुद्रा की साधना में जीह्वा के तालु प्रदेश में ही रहने से सकार का बहिर्गमन नहीं होता अर्थात् सकार का उच्चारण नहीं होता। तब उस अवस्था में स्वर रहित केवल हकार का उच्चारण ही रहता है।

इस तरह खेचरी मुद्रा के बारे में भी विद्वानों के अनुसार मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि केवल आकाश की तरफ विस्फारित नेत्र से

देखते रहने से मन निर्विकल्प होकर ध्यानस्थ हो जाता है और मुद्रा सिद्ध हो जाती है। इसे ही खेचरी मुद्रा कहते हैं। परंतु कुछ लोग इस मुद्रा को हठ योग के अंतर्गत मानते हैं। तब जीह्वा को ऊपर के तालु में रखने का विधान है।

विवेक मार्तंड के अनुसार –

कपाल कुहरे जिह्वे प्रविष्टा विपरिता

भ्रवोरन्तर्गता दृष्टिमुद्रा भवति खेचरी

अर्थात् जीह्वा को उलटकर तालुप्रदेश में विद्यमान कपालकूहर में प्रविष्ट करा दिया जाता है और दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर कर देने से खेचरी मुद्रा बनती है।

श्रीमद् भगवद् गीता में वैसे तो प्राण और अपान के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा गया है परंतु श्रीधरी टीका में गीता अध्याय पांचवे सत्ताइसवें श्लोक में श्रीधर कहते हैं कि उच्छ्वास और निश्वास के रूप में नासिका से निरंतर प्रावाहमान प्राण और अपान की ऊपर और नीचे की ओर की गति को कुंभक प्राणायाम के अभ्यास से समान कर दिया जाता है। अथवा प्राण को बाहर आने नहीं दिया जाता और अपान को भीतर प्रवेश नहीं होने से नासिका के छिद्र तक ही सीमित रहते हैं। इस तरह श्वास की दोनों गति को खेचरी मुद्रा में समान कर लिया जाता है।

परंतु इस मुद्रा के लिए कुछ पूर्व शर्तें हैं और साधारण मनुष्य उन शर्तों अथवा नियमों का पालन नहीं कर सकता।

प्यारे साधको!

यह विधियाँ प्रारंभिक साधकों के लिए नहीं हैं। प्रारंभिक साधकों

को आकाश तक फैली मुद्रा को ही खेचरी के रूप में स्वीकार करके दृश्य, दर्शन और दृष्टा को शून्य करके अ-मन की अवस्था को प्राप्त करना चाहिए।

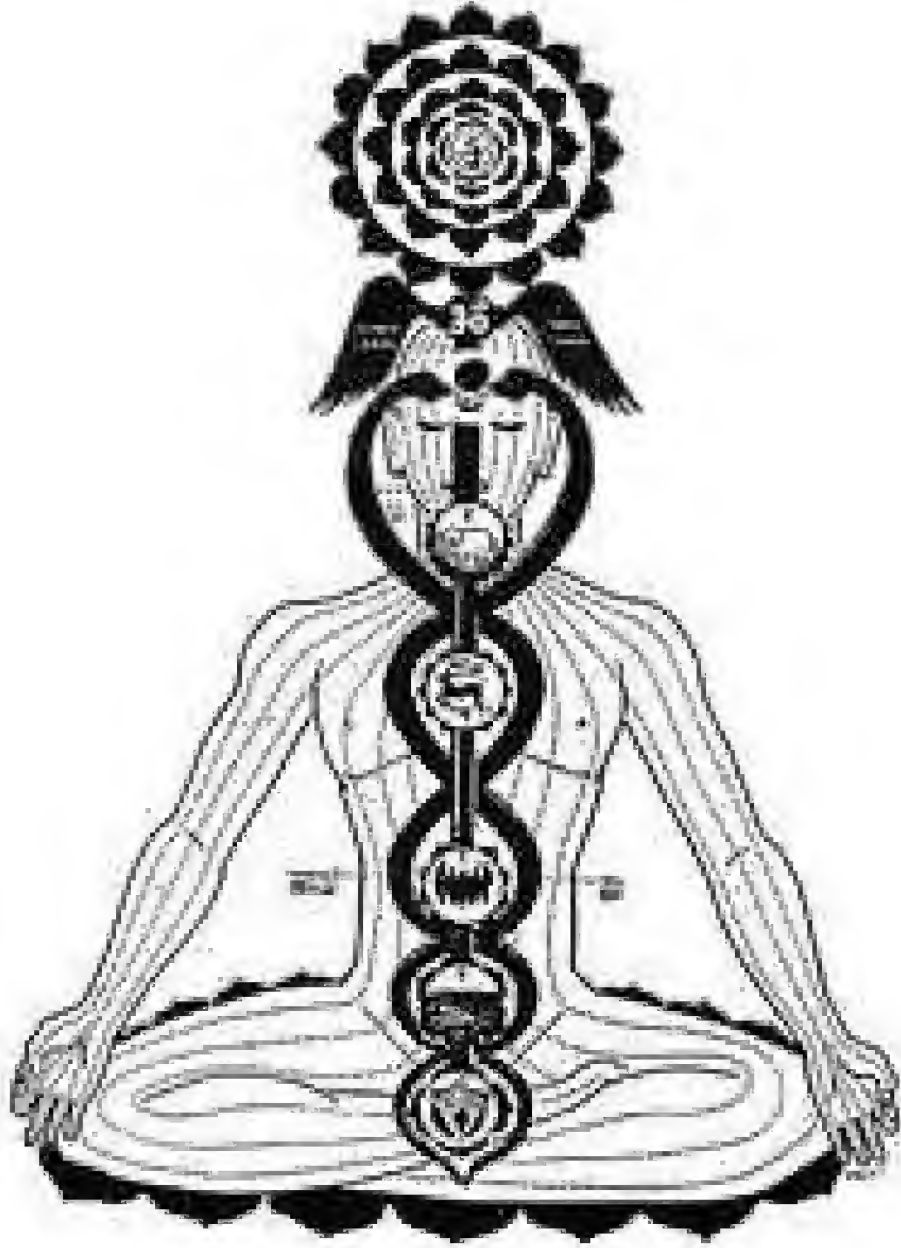
ध्यान रहे, इस विधि में आपको आकाश को नहीं देखना है। केवल विराटता में प्रवेश करना है। आकाश की कल्पना भी मन में नहीं करनी है। क्योंकि आकाश की कल्पना के साथ चांद, तारे, सूरज ये सबके विचार विघ्नरूप बन जाएंगे। आप आसमान में केवल दूर तक देखते रहेंगे। निर्विचार रहेंगे। धीरे-धीरे चित्त को स्थिर होने देंगे। विराट भाव में गहन प्रवेश के साथ धीरे धीरे आपका पराशक्ति साथ अभेद स्थापित हो जाएगा और आप परम शांति तथा अद्वितीय अवस्था का अनुभव करेंगे।

याद रहे, मन की क्षमताएं सीमित हैं परंतु आत्मचेतना की क्षमता असीम। आपकी असीम चेतना जब असीम आकाश के साथ तदाकार हो जाएगी तब आपकी और विश्व की पार्थिवता गिर पड़ेगी। शरीर और दुनिया में रस कम हो जाएगा। दिव्य में उड़ान शुरू हो जाएगी।

दोस्तो, “खं” शब्द का अर्थ है आकाश; और आकाश का अर्थात् अनंत के अखंड दर्शन को ही मैं कहूँगी खेचरी मुद्रा।

विभाग : 20

चक्रों पर आधारित ध्यान विधियाँ



धारणा - 170

मूलाधार चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 170

मूलाधार चक्र प्रति ध्याना, जागा बोध परम विज्ञाना॥

ध्यान विधि - 170

मूलाधार चक्र पर ध्यान
वैगन्धिता करवैत परम
विज्ञान को जानकर बोध
को उपलब्ध हो जाओ ।



मूलाधार केन्द्र पर
 ध्यान करने वाला साधक
 अपनी कामेच्छा का
 अनुनियमन कर सकता है।
 वह काम ऊर्जा के दूरव्यय
 में कभी प्रवृत्त न होकर
 उसका रूपांतरण कर सकता
 है। वह आनंदित रहकर
 प्रसन्नता को फैला सकता है
 और ध्यान की शक्ति से
 विश्व को कुछ अनूठा और
 अद्वितीय देख जाता है।
 जिसे दुनियां युगों तक याद
 करती है। ऐसे साधक की
 कला, सृजन, वक्तव्य और
 व्यवस्था एक अमर इतिहास
 बनकर रह जाती है।

प्यारे साधको!

मनुष्य देह अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश और जल जैसे पांच तत्वों के उपरांत अन्य कई गुणों का संयोजन है। परंतु उनमें से पृथ्वी तत्व प्रमुख है। इसी कारण पृथ्वी मनुष्य को आकर्षित करती रहती है। पृथ्वी से मनुष्य का इतना तदात्म्य है कि सामान्य स्थिति में उसे स्वयं के भीतर के आकाश तत्व का बोध नहीं रहता। अगर वह स्मरण सहज रूप से रहता तो उसे ध्यान के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता, न ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण की बात करनी पड़ती। वह स्वयं ही इतना सजग होता कि पार्थिव कारणों और पार्थिव चीजों के लिए बहती और व्यय होती ऊर्जा का स्वतः ऊर्ध्वीकरण हो जाता।

परंतु जिस शरीर को आप देख सकते हैं। उसे विज्ञान ने फीज़िकल बॉडी कहा है, वेद उसे स्थूल शरीर कहते हैं। दोस्तों, पृथ्वी भी स्थूल है। समान गुणधर्मा का आकर्षण स्वाभाविक है। स्थूल शरीर में पृथ्वी तत्व की प्रधानता है। शरीर में जल तत्व भी विशेष रूप में होने के कारण उसका समावेश भी वैसे तो पृथ्वी तत्व में ही होता है।

आसमान से बरस जाने के बाद पृथ्वी उस जल को संग्रहित करके रखती है। मूलाधार चक्र का सीधा संबंध पृथ्वी तत्व के साथ ही है। आप अगर उस चक्र पर थोड़ा ध्यान देंगे तो ये सारी बातें सहजता से आपकी समझ में आ जाएंगी। परंतु मनुष्य इतना बहिर्मुखी है कि भीतर के विज्ञान का ज्ञान उसे आकर्षित नहीं करता अथवा वह अपनी बहिर्मुखता के कारण भीतर की सूक्ष्मताओं को समझना चूक जाता है। वास्तव में वह समझ स्वास्थ्य, शांति और ज्ञान का कारण है।
प्यारे साधको!

भारत के मनीषियों ने अंतर्मुखी होकर शरीर की आंतरिक रचना को समझकर उसका आध्यात्मिक विकास में कैसे उपयोग हो सकता है। इस बात को एक वैज्ञानिक ढंग से समझाया है। फिर भी इस विषय को विज्ञान नहीं परंतु ज्ञान कहा गया है। क्यों? क्योंकि विज्ञान शरीर को चीर-फाड़ उसके अवयवों को देखते है। उसका अभ्यास करते हैं। उसके कार्यों को बताते हैं। ज्यादा से ज्यादा उन अंगों की बीमारियों को ठीक करने के लिए दवाईयों की खोज करते हैं। दवाईयां असफल जाने पर अंगों पर शस्त्र क्रिया करते हैं। परंतु मनुष्य की कौन सी विशेषता, कौन से सूक्ष्म स्थान के कारण है? यह जानने में पूरे पूरे सफल नहीं रहे हैं। जबकि योग और तंत्रज्ञान विज्ञान से कई गुनी गहराईयों में उतरकर मनुष्य को सर्व प्रकार से स्वास्थ्य को प्रदान करने का मार्ग बताते हैं। जिसमें आध्यात्मिक स्वस्थता का भी समावेश होता है।

कुछ वर्ष पहले तक आधुनिक विज्ञान सूक्ष्म शक्तियों में और अध्यात्म में विश्वास नहीं करता था परंतु अब वह भी प्रार्थना, ध्यान, संगीत, आदि आध्यात्मिक उपायों में विश्वास करने लगा है।

प्यारे साधको!

तंत्र और योग शरीर की इतनी सूक्ष्मताओं में उतरे हैं कि वे कहते हैं कि षट्चक्रों पर ही सबकुछ आधारित है। और प्रत्येक चक्र के रंग, रूप, गुण, वर्ण बताते हैं। जो मैंने संक्षेप में आगे बता दिया है। परंतु प्रत्येक चक्र के गुण तथा वायु स्थान, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और लोक आदि बताकर उसने एक अद्भुत संशोधन किया है।

मुझे यहाँ मूलाधार चक्र पर ध्यान कैसे किया जाए? और उसका परिणाम क्या है? यह बताना है परंतु मूलाधार चक्र को स्थूल रूप से पकड़ने का कोई उपाय नहीं है। परंतु शरीर के स्थूल स्थानों को बता कर उन चक्रों के सूक्ष्म स्वरूप की ओर संकेत किया जा सकता है।

मूलाधार चक्र का स्थान गुदामूल से दो अंगुल ऊपर और उपस्थमूल से दो अंगुल नीचे है। यह एक इशारा मात्र है। यह चक्र तो प्राणों की भांति है, अर्थात् सूक्ष्म है, एक अर्थ में सारे चक्र हैं प्राण ऊर्जा के विशेष स्थान हैं। उसका तत्त्व स्थान पृथ्वी है। गुण गंध है। हमेशा नीचे की ओर चलने वाले अपान वायु का यह मुख्य स्थान है। ज्ञानेन्द्रिय नासिका है और कर्मेन्द्रिय पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होने वाली मल त्याग शक्ति गुदा स्थान है।

प्यारे साधको!

यह सब इसलिए बता रही हूँ कि चक्र के सूक्ष्म स्थान के प्रति आप सजग हो और उसकी आपके जीवन में जो भूमिका है उसका आपको परिचय हो।

तंत्र ग्रंथों में बताया गया है कि योनि मंडल के मध्य में तेजोमय रक्त वर्ण क्लिं बीज रूप कंदर्प नाम का स्थिर वायु जो उनचास प्रकार

की वायु में से एक है, वह विद्यमान है। जिसके मध्य में ब्रह्म नाड़ी के मध्य में स्वयंभू लिंग है। इसमें कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन कुंडल में लिपटी हुई शंख के आवर्तन के समान है।

प्यारे साधको!

मूल शक्ति अर्थात् शक्ति का आधार होने से इस चक्र को मूलाधार कहते हैं।

सबसे पहली बात तो यह समझ लीजिए कि यह चक्र यौन शक्ति का स्थान है। यौन संबंध सृष्टि चक्र का आधार है। मनुष्य की उत्पत्ति के बाद आज तक मानव सृष्टि को आगे बढ़ाने के लिए यौन संबंध के सिवाय किसी अन्य रास्ते को सनातन या कुदरती रास्ता नहीं कह सकते। इस चक्र पर ध्यान करने की विधि बताने के साथ साथ मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि आचार्य रजनीश जैसे अपवाद रूप चिंतकों को बाद करते हुए लगभग सभी साधु-बाबाओं ने योग और ध्यान की बड़ी बड़ी बातें करने पर भी वास्तविकताओं को छिपाया है अथवा सत्य को घुमाफिरा कर कहा है।

मैं मानती हूँ कि जो सत्य है उसे अपने मूल रूप में ही व्यक्त होने देने चाहिए। उसमें घुमाने फिराने की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। तंत्र को एक विशुद्ध और उत्तम विज्ञान के रूप में भारत के ऋषिओं ने दिया है। उन ऋषियों में से कुछ ने काफी धर्मग्रंथ भी लिखे।

समय के साथ कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए उन धर्म ग्रंथों में उनकी ओर से कुछ जोड़ दिया। धर्मों ने पाप-पुण्य और स्वर्ग-नर्क का ठेका ले लिया। तथाकथित धर्मगुरु मोक्ष के ठेकेदार बन बैठे। उन धार्मिक ठेकेदारों ने अवास्तविक बातों में लोगों को उलझा दिया और

सत्य को ढांक दिया। वे सत्य पर इतने बरसों तक पर्दे डालते रहे कि मनुष्य अपने ही शरीर को जानना समझना और उसकी जरूरतों को पूरी करने को पाप समझने लगा। फिर भी यह सब छिप छिप के होता तो रहा क्योंकि सत्य था।

फिर भी धीरे धीरे लोक मानस में एक ऐसी गलत धारणा ठसा दी गई कि संसार छोड़ने वाले और कंचन-कामिनी का त्याग करने वाले ही श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मचारी ही श्रेष्ठ है और भोग भुगतने वाला हीन। भोगों की निंदाने मनुष्य के हृदय को अपराध भाव से भर दिया। ब्रह्मचर्य की व्याख्या ही बदल गई। ब्रह्म का भले कोई बोध न हो परंतु देह दमन करके जीने वाले और अविवाहित रहकर साधु बनने वाले समाज में श्रेष्ठ और पूजनीय बन गए। ऐसा साधु जो मानसिक और देहिक स्वखलनों से भले निस्तेज दिख रहा हो फिर भी कुछ मनगढ़ंत सिद्धांत ठोक पीट कर धार्मिक सिद्धांत के रूप में बिठा दिया गया कि जैसे ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ और संसार-सुख पाप, भोग पाप, संभोग महापाप और नारी नर्क का द्वार। आश्चर्य की बात तो यह हुई कि उस द्वार से पैदा होने वाले ही आम जनता को स्वर्ग में पहुंचाने वाले ठेकेदार बन गए। धर्म की ऐसी खिचड़ी बना दी कि सत्य का गला घुट गया। सही क्या? क्या गलत? इस बात का निर्णय करना मुश्किल हो गया। परंतु ऐसी स्थिति में भी तंत्र ग्रंथ आज तक तटस्थ रहे हैं। वे अपने मूल रूप में बच पाए हैं इतना मनुष्य का सदभाग्य है। परंतु तंत्र-शास्त्र की भी भरपेट निंदा हुई, बहिष्कार हुआ। क्यों? क्योंकि वे भोग के विरोध में नहीं थे और न ही त्याग के पक्ष में। वे तो तटस्थ थे।

कुदरती रचनाओं को, उनके कार्यों को, उनके लाभ को और

उनके सम्यक प्रयोग से प्राप्त होने वाली शांति और मुक्ति को तथा उनके द्वारा सहज प्राप्य संसार के आनंद जैसे पहलुओं को लेकर तंत्र बात करते हुए काम कर रहा था।

तंत्र का पूरा दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। परंतु प्रत्येक क्षेत्र की तरह इस क्षेत्र में भी कुछ ढोंगी, दुष्ट, पाखंडी और व्यभिचारी लोग जो तंत्र को सही अर्थ में नहीं जानते थे; उन्होंने तांत्रिक के रूप में तंत्र क्षेत्र में घुसपैठ कर ली और तंत्र का इतना दुरुपयोग किया कि पूरा तंत्र मार्ग निन्दनीय बन गया।

वास्तव में कोई भी शास्त्र, धर्म, अथवा मार्ग निन्दनीय नहीं हैं परंतु मनुष्य उसका सम्यक उपयोग करना नहीं जानता।

अब आईए ध्यान विधि की ओर। मूलाधार चक्र का सीधा संबंध सृष्टि चक्र के साथ है। स्त्री और पुरुष के यौन संबंध में जो आनंद की मात्रा है वह इस पृथ्वी तत्व युक्त मूलाधार चक्र के कारण है।

मुझे पता है, भारत में कई प्रकार की विशेषताएं एवं उदारताएं हैं। ठीक उसी प्रकार से कई प्रकार की संकीर्णताएं भी हैं। एक साध्वी इतने स्पष्ट रूप से तंत्र की वास्तविकता और संसार सुख की चरम सीमा की बात करे और वह भी ध्यान के आधार पर तो उसे संकीर्ण धार्मिक मानस सहन नहीं कर सकता। संभव है थोड़ी निंदा हो भी जाए। जो लोग कुछ भी करने के लिए सक्षम नहीं हैं वे लोग दूसरों की निंदा में प्रवृत्त हो जाते हैं। वे सत्य की भी निंदा कर लेते हैं। क्योंकि कुछ सत्य उनके लिये सुपाच्य नहीं होते।

प्यारे साधको!

मैं फिर से एक बार कहती हूँ कि मेरे ध्यान ग्रंथों को ज्यादा से

ज्यादा एक सत्संग के अर्थ में भले ले लो परंतु उसे धर्म-ग्रंथ समझकर मत पढ़ना। यदि पढ़ना है तो सत्शास्त्र समझकर पढ़ना। मैं मानती हूँ कि सत्य को दबा देना और खोखली बातों को धर्म का नकाब पहनाकर सच को ढांक देना यह सबसे बड़ा अधर्म है। क्योंकि ऐसा होने से बहुत बड़ा मानव समुदाय गुमराह होता है; जो हो चुका है। और सत्य को चूक गए हैं।

ऐसा होने से लोग सही समझ से वंचित रह जाते हैं। आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व रह जाते हैं। और धर्म के नाम पर एक अर्ध पागल समाज अस्तित्व में आता है और कुछ पाखंडी लोग समाज पर वर्चस्व करने लगते हैं।

जो पागलपन कई लोगों की सच्ची आवाज को कुचल देता है। ऐसा करने के लिए पाखंडी लोग अर्धपागलों की भीड़ को हाथा बनाते हैं और धर्म विकृत होता जाता है।

ध्यान और तंत्र के साथ ऐसा होता आया है। परंतु मैं चाहती हूँ कि कम से कम आप उससे बच निकलो और ध्यान में उतरकर आत्मअनुभूति से सत्य को जान लो। ताकि मान्यता नहीं परंतु सत्य प्रकाश में आए। मैं कोई धर्मग्रंथ नहीं लिख रही हूँ। मैं तो ध्यान के संदर्भ में कुछ सच्चाईयों को पुस्तक के रूप में सुरक्षित कर रही हूँ।

प्यारे साधको!

काम ऊर्जा विश्व का मूल है। और मूलाधार चक्र काम ऊर्जा का मूल है। अगर मनुष्य इस ऊर्जा को समझे तो उसके स्खलन के सिवाय भी कई अद्भुत और सुंदर स्वरूपों में रूपांतरित कर सकता है। इसीलिए मूलाधार चक्र पर ध्यान करना आवश्यक है। औसत मनुष्य काम ऊर्जा

के दो ही उपयोग समझते हैं। एक तो विषय वासना को संतुष्ट करना और दूसरा बच्चों को पैदा करना।
प्यारे साधको!

इन दोनों के उपरांत भी आप काम ऊर्जा को ध्यान के द्वारा आप काम ऊर्जा को रूपांतरित करके कुछ सुंदर चीजों का निर्माण कर सकते हैं। परंतु इसके लिए उसके केन्द्र के आवेगों को कैसे दूसरी सुंदर दिशा में मोड़ा जाए ऐसी समझ को और इसके लिए विशेष क्षमता को विकसित करना पड़ता है। यह सब ध्यान से संभव है।

परंतु जहाँ तथाकथित धार्मिक मानस ने काम ऊर्जा की चर्चा को ही हीन मान लिया है, वहाँ बेचारा आदमी सत्य बात को उसके असल रूप में जानने में भी संकोच का अनुभव करता है। वह सत्य को जानना तो चाहता है परंतु दंभी समाज से डरता है।

मैं कहूँगी कि “ध्यान किया तो डरना क्या?” प्रेम अंधा हो सकता है परंतु ध्यान तो अंधों को दृष्टि देता है। निरर्थक पदों को चीर फाड़कर आपको सत्य का साक्षात्कार करा देता है। मुझे कहते हुए हंसी भी आती है और आश्चर्य भी होता है कि अर्थहीन ग्रंथ ज़ाहिर में पढ़े जाते हैं और अर्थपूर्ण शास्त्रों को आदमी छिप छिपकर पढ़ता है। क्यों ? ? ? ? ?

दोस्तो, मैं कहना चाहूँगी कि मनुष्य के भीतर के सभी चक्र अद्भुत हैं परंतु वे आजतक केवल एक चक्र की ही गहरी असर में हैं और वहाँ ही अटका हुआ है जो है – काम वासना पूर्तता की क्रिया। इस क्रिया को मैं संभोग इसलिए नहीं कह रही हूँ कि आज संभोग कहाँ होता है? केवल वासना तृप्ति होती है। संभोग के नाम से वह वन-वे हो सकती है।

नर-नारी परस्पर सम्यक उपभोग में लीन हों, दोनों प्रसन्न हों, दोनों सहमत हों, दोनों तृप्त हों और दोनों परस्पर उत्सुक हों तथा परस्पर समान रूप से परितृप्त करने में रसलीन हों तभी उसे संभोग कह सकते हैं। परंतु आज क्या है?

बे-मन घटती शारीरिक क्रिया को संभोग जैसा उत्तम नाम कैसे दे पाएंगे? क्या बलात्कार को संभोग कह सकते हैं? एक पक्षी खाली होने में दूसरे पात्र का बे-मन शामिल होने में आनंद कहाँ? कुछ आचार्यों ने व्यभिचार को संभोग कह दिया। ये भारत का दुर्भाग्य है।

मैं कहूँगी कि दो पात्रों के परस्पर पूर्ण प्रेम में होने के बाद जब शरीर को स्वेच्छा से परस्पर समर्पित किया जाए तब घटता है सम्यक भोग। दोस्तो, सम्यक शब्द एक अद्भुत शब्द है। इसीलिए तो वैश्यागमन करने वाले को भारत के ऋषियों ने व्यभिचारी कहा है। धन लालसा से, रूप लालसा से, मजबूरी से या फर्ज मानकर हुआ दो शरीरों का मिलन सम्यक भोग नहीं है।

खैर! प्यारे साधको!

अब शायद आप मूलाधार चक्र की महिमा को समझ पाएंगे। वह काम केन्द्र होने पर भी केवल विषय वासना की तृप्ति के लिए मर्यादित नहीं है। एक शुद्ध स्थान में अथवा सपाट चट्टान पर अथवा खुले खेत में या किसी भी शांत स्थान में पलाठी लगाकर मूलाधार चक्र पर ध्यान करो। इसका अर्थ यह नहीं करना है कि आप शरीर के किसी स्थूल भाग पर ध्यान करो। परंतु आपको यह संकल्प करना है कि मेरी काम ऊर्जा परिशुद्ध है। वह परम शक्ति है। वह मुझे कुदरत की ओर से मिली हुई एक बख्शीश है। उस शक्ति के कारण मैं एक पूर्ण मानव हूँ,

सर्जक हूँ, सृष्टा हूँ, गौरवांवित हूँ, बेहोशी में वासनाग्रस्त होकर मुझे उस शक्ति का व्यय नहीं कर देना है। उस शक्ति का संचय करके मैं उससे कई गुना बेहतर और कलात्मक कार्य कर सकता हूँ।

प्यारे साधको!

जिसका मूलाधार चक्र स्वस्थ और सुचारू रूप से कार्यान्वित होता है – वह व्यक्ति आकर्षक, ऊर्जावान, ओजस्वी, तेजस्वी, रसिक, आनन्दित, स्वस्थ, व्यवस्था शक्ति में निपुण, कवि, कलाकार या लेखक हो सकता है।

परंतु ज्यादातर लोगों को अपनी शुष्क शक्ति का पता नहीं होता। मैंने अच्छे अच्छे कलाकारों को, कवियों को, सर्जकों को और क्षमतावान लोगों को काम ऊर्जा का उचित नियमन करने की क्षमता के अभाव में अधःपतित होते हुआ देखा है। यह ध्यान के अभाव का परिणाम है।

मूलाधार केन्द्र पर ध्यान करने वाला साधक अपने कामेच्छा का अनुनियमन कर सकता है। वह काम ऊर्जा के दूरव्यय में कभी प्रवृत्त न होकर उसका रूपांतरण कर सकता है। वह आनंदित रहकर प्रसन्नता को फैला सकता है और ध्यान की शक्ति से विश्व को कुछ अनूठा और अद्वितीय देकर जाता है। जिसे दुनियां युगों तक याद करती है। ऐसे साधक की कला, सृजन, वक्तव्य और व्यवस्था एक अमर इतिहास बनकर रह जाती है।

तो दोस्तो, अगर आपको उचित लग रहा है तो कम से कम तीन महीने और ज्यादा से ज्यादा तीन साल तक इस विधि में उतरो; फलतः आपमें एक अतिमानव का अनुभवन करोगे।

धारणा-171

स्वाधिष्ठान चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 171

स्वाधिष्ठान में स्थिर करी चित्ता, स्वअनुशासन मन की न चिन्ता ॥

ध्यान विधि - 171

स्वाधिष्ठान में ध्यान को
स्थिर करने वाला सहज
ही आत्मानुशासन में
प्रवेश करके चिंता के पार
हो जाता है ।



दोस्तो, पूरी सृष्टि विकसित हो रही है। जीव, जंतु, वृक्ष-वेली विकसित हो रहे हैं। आपका शारीर विकसित हो रहा है परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से कहें तो आप क्यों अविकसित रहें? लोग कहते हैं कि हिमालय भी बढ़ रहा है। जरा सोचो! अगर स्थूल चीजें और पत्थर भी विकसित हो रहे हैं तो आपको अवश्य विकसित होना है।

प्यारे साधको!

यहाँ से ही आपकी साधना की सच्ची कसौटी शुरू होती है। मूलाधार चक्र तक तो आप जन्म से ही पहुँचे हुए हैं। आपके जन्म का सीधा सम्बंध मूलाधार चक्र से है। आप उसकी शक्तियों से केवल सजग नहीं हैं परंतु मूलाधार चक्र को समझने के बाद आपको अब उससे ऊपर उठना है।

दोस्तो, पूरी सृष्टि विकसित हो रही है। जीव, जंतु, वृक्ष-वेली विकसित हो रहे हैं। आपका शरीर विकसित हो रहा है परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से कहें तो आप क्यों अविकसित रहें? लोग कहते हैं कि हिमालय भी बढ़ रहा है। ज़रा सोचो! अगर स्थूल चीज़ें और पत्थर भी विकसित हो रहे हैं तो आपको अवश्य विकसित होना है।

आपके विकसित होने का अर्थ यह नहीं कि आपके पास धन-दौलत और नाम-शोहरत बढ़ जाए, बिज़नेस बढ़ जाए, आपका परिवार बढ़ जाए, विशेष सत्ता हासिल करो। आपका विकसित होने का अर्थ है - आपका आत्मसत्ता में प्रवेश हो। तंत्र मनुष्य को आंतरिक और

आध्यात्मिक रूप से विकसित करता है। वह मनुष्य को विशेष आनंद, विशेष ज्ञान और विशेष शांति में प्रवेश कराने का द्वार है। इस ऊमदा उद्देश्य से ही तंत्र का आविर्भाव हुआ है।

प्यारे साधको!

अब स्वाधिष्ठान चक्र की ओर आईए। स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेडु के पास है। यह स्थूल स्थान के द्वारा सूक्ष्म के प्रति संकेत किया जा सकता है। इस चक्र का बीज गति है। वह गति नीचे की ओर है। गुण रस है। सारे शरीर में व्याप्त रहने वाला और गति करने वाला व्यान वायु का यह मुख्य स्थान है। उसकी ज्ञानेन्द्रिय जिह्वा है। जो रस तनमात्रा से उत्पन्न है और कर्मेन्द्रिय जल तत्व से उत्पन्न मूत्र त्याग शक्ति उपस्थ (स्त्री और पुरुष का जननांग) है।

प्यारे साधको!

यह सूक्ष्म स्थान सृजन और पालन का स्थान है। तंत्र ग्रंथों के अनुसार इस स्थान पर ध्यान करने से मनुष्य सर्जन क्षमता और पालन क्षमता बढ़ती है। स्वाधिष्ठान का अर्थ है स्व पर अधिष्ठान। अपना अधिष्ठाता आप ही बनो। स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान करने वाला स्वयं पर स्वयं का अनुशासन रख सकता है। आत्मनियंत्रण एक सिद्धि है। जिसे स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान करने वाला सहजता से हासिल कर सकता है। सामान्य रूप से आदमी दिखता है स्वतंत्र परंतु अनेक अनेक प्रकार की मानसिक गुलामियों में जीता है। एक अर्थ में वह गुलाम ही है। आप अगर कभी शांति से बैठकर सोचेंगे तब पता चलेगा कि आप कितनी कितनी चीजें, इच्छाएं और आदतों के गुलाम हैं! आपके अधिष्ठाता आप नहीं है, कोई और है। आपकी बागडोर किसी ओर के हाथ में है। आप तथाकथित

स्वतंत्र हैं वास्तव में आपको अनेक प्रकार की पशुता ने घेर रखा है।

सुप्रसिद्ध विचारक थोरो ने कहा है कि मुझे जब जब समय मिलता है तब तब मैं मेरे भीतर के पशु का नियामक बनने का प्रयास करता हूँ।

प्यारे साधको!

स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान करने से स्वनियमन, आत्मनियमन, आत्मनियंत्रण, आत्मानुशासन में प्रवेश होता है।

मनुष्य आत्मानुशासन में जी रहा है कि नहीं, इसका पता कैसे चलेगा? क्या है इसका प्रमाण? दोस्तो! इसके दो प्रमाण हैं। एक तो व्यवहार और दूसरा वाणी। इस चक्र पर ध्यान करने वाले की वाणी में ऋजुता, सजगता, प्रेम, विद्वता और करुणा उतर आते हैं। व्यवहार में भी इन गुणों का दर्शन होता है। तंत्र मार्ग के ऋषि तो यहाँ तक कहते हैं कि ऐसे ध्यानी की वाणी में साक्षात् सरस्वती उतर आती है। मेरी दृष्टि से सरस्वती का अर्थ है – विनय और विवेकशीलता।

प्यारे साधको!

शास्त्र कहता है कि वाक्पात और वीर्यपात दोनों में बराबर रूप से ऊर्जा क्षीण होती है। स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान करने से वाणी संयमित होती है। वह वाणी द्वारा अपनी ऊर्जा को क्षीण नहीं होने देता। वाणी में सरस्वती उतर आने का अर्थ है – वाणी में विनय और विवेकशीलता। वाणी में विनयशीलता का अर्थ ही है – संयमित और सम्यक वाणी बोलना।

मनुष्य के ध्यानी होने का प्रमाण क्या है? ध्यान के लिए मेरे पास हज़ारों लोग आ चुके हैं। मेरे अनुभव से मैं कहती हूँ कि ध्यानी को

न तो चुप रहना पड़ता है और न ही उसे चुप करना पड़ता है। आवश्यकता के अनुसार उसकी वाणी में सहज मौन उतर आता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं करना कि वह बोलता नहीं है। परंतु वह बकवास कभी नहीं कर सकता। निरर्थक बातों में अपनी ऊर्जा और समय का व्यय नहीं करता। आवश्यकता खड़ी होने पर उचित बात को कहकर आग्रहों से मुक्त रहता है।

स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान करने वाला मनुष्य मृत्यु पर अपना वश रख सकता है। दोस्तो! इसका अर्थ यह नहीं करना कि वह कभी शरीर का त्याग नहीं करेगा। परंतु जीवन के लिए उसकी संकल्प शक्ति सामान्य मनुष्य से विशेष रूप से सक्रिय रहती है। ऐसे साधक में जीवन लक्ष्मी गुण विशेष रूप से होते हैं।

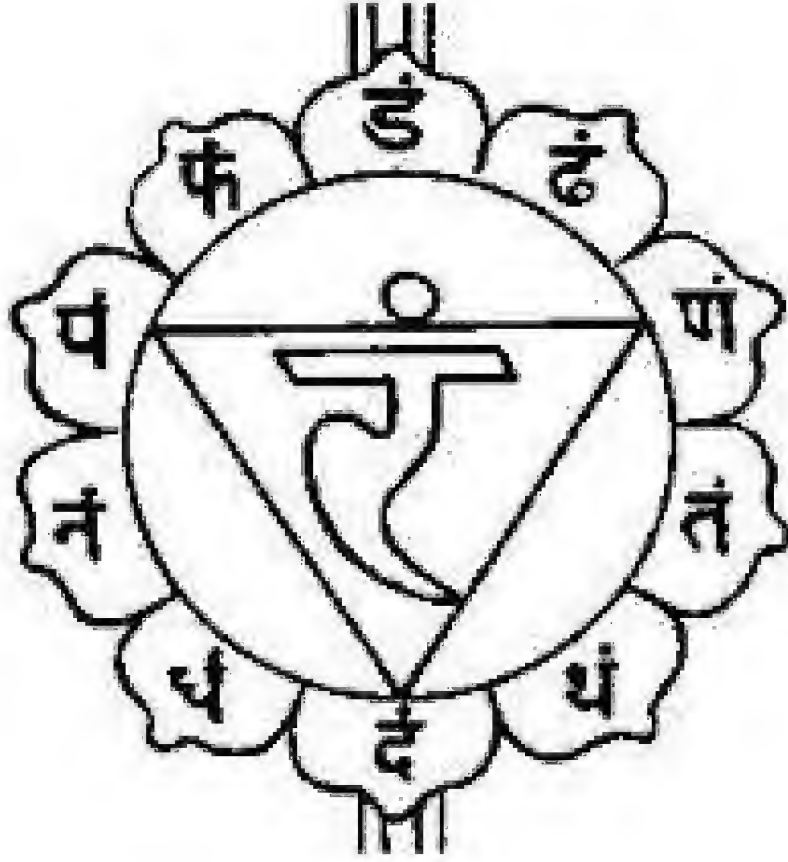
मैंने कुछ ऐसे लोगों को निकटता से जाना है। जो ताई चे आर्टिस्ट हैं। ताई चे यह एक आत्म रक्षा का खेल है। किसी से लड़ते हुए भी अहिंसा बनी रहे ऐसा आर्ट अगर है तो वह है ताई चे। खैर! यहाँ मुझे बात यह करनी है कि ताई चे आर्टिस्ट इत इत शब्द का उच्चार करते हैं। मुकाबले के वक्त उसका स्वाधिष्ठान चक्र और मणिपूरक चक्र इतना शक्तिपूर्ण रहता है कि उसके पेट के स्नायू पत्थर जैसे बन जाते हैं। उसपर भारी प्रहार होने पर भी वहाँ ज्यादा असर नहीं पड़ता।

मैंने सुना है कि यह कला बौद्ध भिक्षुओं ने आत्मरक्षा के लिए विकसित की थी और जिन्दा भी रखी है। भारत से ज्यादा चीन, नेपाल, तिब्बत आदि इलाकों में यह कला मूल रूप में जीवित है। ऐसी कला के कारण मृत्यु का दूर रहना स्वाभाविक है। ऐसे साधक को कोई आसानी से नहीं मार सकता।

प्यारे साधको!

अगर आपको स्वाधिष्ठान चक्र को विशेष रूप से जाग्रत करने में रस है तो बैठ जाओ किसी एकांत स्थान में। कम से कम तीन महीने से लेकर तीन साल तक ध्यान को केन्द्रित करो उन बिन्दुओं पर और असाधारण जीवन के आनंद को प्राप्त करो।





धारणा - 172

मणिपूरक चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 172

मणिपूरक पर ध्यान लगाओ, साधक मन के पार चले जाओ ॥

ध्यान विधि - 172

माँठा पूरक चक्र पर
ध्यानस्थ होकर मन के
पर चलै जाओ ।



भो

जन और मन का गहरा संबंध है। भोजन के सूक्ष्म भाग में से मन बनता है। हम कह सकते हैं कि प्रथम मुख नाभि होने से मन का स्थान मनुष्य के मस्तिष्क में नहीं परंतु पेट में है। आज विज्ञान भी इस बात का स्वीकार कर रहा है। यह अग्नि तत्व का मुख्य स्थान है। स्वास्थ्य और आयुर्वेद की दृष्टि से देखा जाए तो जिसकी अग्नि मंद होती है उसकी पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। पाचन क्रिया में विक्षेप होने से मनुष्य का मन भी विक्षिप्त हो जाता है। यह सत्य प्रमाण है कि मन का पेट के साथ सीधा संबंध है।

प्यारे साधको!

मनुष्य के पास दो मुख हैं। जिनमें से प्रारंभिक मुख नाभी है। जन्म के पहले हम सबने नौ महीने तक माँ के गर्भ में नाभि के साथ जुड़ी हुई एक नलिका के द्वारा खुराक पाई है। हम उस मुख से माँ के शुद्ध रक्त से खुराक पाकर गर्भ में विकसित हुए। जन्म के बाद अस्तित्व ने मनुष्य को कहा कि अब तू स्वयं पुरुषार्थ कर। तबसे मनुष्य खुद श्वास लेने लगा, दूध पीने लगा और भोजन को पचाकर बड़ा होने लगा।

इस नाभि स्थान को तंत्र की भाषा में मणिपूरक चक्र कहते हैं। जिसे अंग्रेजी में एपीगेस्ट्र प्लेक्सस अथवा सोलर प्लेक्सस कहा जाता है। दोस्तो! यह तो सूक्ष्मचक्र के प्रति एक संकेत मात्र है। एक बात बार बार इसलिए कह रही हूँ कि आपको याद रहे कि कोई भी चक्र शरीर का स्थूल भाग नहीं है। परंतु वह तो शक्ति का केन्द्र है। शक्ति का केवल अनुभव मात्र हो सकता है।

प्यारे साधको!

भोजन और मन का गहरा संबंध है। भोजन के सूक्ष्म भाग में से

मन बनता है। हम कह सकते हैं कि प्रथम मुख नाभि होने से मन का स्थान मनुष्य के मस्तिष्क में नहीं परंतु पेट में है। आज विज्ञान भी इस बात का स्वीकार कर रहा है। यह अग्नि तत्व का मुख्य स्थान है। स्वास्थ्य और आयुर्वेद की दृष्टि से देखा जाए तो जिसकी अग्नि मंद होती है उसकी पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। पाचन क्रिया में विक्षेप होने से मनुष्य का मन भी विक्षिप्त हो जाता है। यह सत्य प्रमाण है कि मन का पेट के साथ सीधा संबंध है।

मणिपूरक चक्र का गुण रूप है और वायु समान ना का वायु है। जो वायु खान-पान के रस को संपूर्ण शरीर में अपने अपने स्थान पर समान रूप से पहुंचाता है। उसकी ज्ञानेन्द्रिय रूप तन्मात्रा से उत्पन्न देखने की शक्ति नेत्र स्थान है और कर्मेन्द्रिय पैर है।

प्यारे साधको!

इस चक्र पर ध्यान कैसे करना चाहिए यह समझ लीजिए। शांत चित्त से स्थिरासन में पलाठी लगाकर बैठकर चित्त को नाभिकेन्द्र पर स्थिर करने से मन भी स्थिर होने लगेगा। ध्यान के कारण आपकी सारी ऊर्जा इस केन्द्र पर घनीभूत होने लगेगी। ध्यान में निर्विचार स्थिति पैदा होने के कारण निरर्थक विचारों में व्यय होती ऊर्जा बचने लगेगी। मन की चंचलता शांत होने से पाचन क्रिया सुधरेगी। क्योंकि मन का संबंध सीधा इस केन्द्र के साथ है।

दोस्तो, आपका मन स्वस्थ नहीं होगा तो वह पेट को बिगाड़ेगा और पेट अस्वस्थ होगा तो मन को दूषित करेगा। इस केन्द्र पर क्रिया हुआ ध्यान मन और शरीर के बीच का संतुलन साधता है।

इस केन्द्र पर चेतना को स्थिर करने से मन प्रफुल्लित होता है।

मन की प्रसन्नता के कारण उत्साह, आनन्द और फुर्ति का अनुभव होता है। मनुष्य में अपने शरीर को समझने की क्षमता बढ़ती है।

दोस्तो, शरीर और मन अलग नहीं हैं। मैं कई बार कह चुकी हूँ कि मन सूक्ष्म शरीर है और शरीर स्थूल मन है। जब मनुष्य अपने शरीर को ठीक तरह से समझने लगता है तो मन स्वतः स्वस्थ रहता है। क्योंकि मन के कई प्रश्न शरीर के द्वारा सुलझ जाते हैं परंतु ध्यान के सिवाय यह संभव नहीं है। ध्यान का अर्थ है स्वयं के प्रति लक्ष्य देना। आत्म चेतना के प्रति लक्ष्य देने से जब देह और मन स्वस्थ रहते हैं तो प्रसन्नता सहज बन जाती है।

अफसोस की बात है कि दुनियादारी के प्रति जरूरत से ज्यादा लक्ष्य देने वाले के पास खुद के प्रति लक्ष्य देने का समय नहीं है। ध्यान से दूर रहकर मनुष्य अनेक प्रकार की हानि से त्रस्त है। मैं कहती हूँ कि फिर से एक बार लौट आईए ध्यान की ओर। स्वयं के लिए समय दो स्वयं के प्रति लक्ष्य दो। कम से कम तीन महीने से लेकर तीन साल तक साधना करते रहो। देह, मन और प्राण सबको सूक्ष्मता से जानो उसे जानकर ही आप उसके पार जा सकते हो।





धारणा - 173

अनाहत चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 173

चक्र अनाहत उत्तम भाई, तेहि पर ध्यान परम फल दाई॥

ध्यान विधि - 173

अनाहत चक्र पर ध्यान
करके परम पद को प्राप्त
कर लो ।



अपने हृदय पर ध्यान करने से आप अन्य के हृदय की बातों को भी सहजता से जान पाएंगे और समझ पाएंगे। और उसके साथ न्याय कर पाएंगे। आरंभ में ध्यान न भी लगे तो भी ध्यान के लिए बैठते रहो क्योंकि धीरे धीरे हृदय स्थान का शुद्धिकरण होकर अपने भीतर ही संशय समाधान की प्रक्रिया हो जाएगी। सारे समाधान भीतर से ही आएंगे। आपका हृदय ही आपका गुरु या सच्चा मार्गदर्शक बन जाएगा।

प्यारे साधको!

अनाहत चक्र शरीर का एक अद्भुत चक्र है। वैसे तो सभी चक्र अद्भुत हैं परंतु इस चक्र को मैं अद्भुत इसलिए कह रही हूँ कि यहां से ॐ की ध्वनि लगातार उठती रहती है। प्रेम का प्रवाह भी इस केन्द्र से ही बहता है जो विश्व का आधार है। मैं कहूँगी कि अनाहत चक्र के बिना मूलाधार चक्र और मूलाधार चक्र के बिना अनाहत चक्र अधूरा है। क्योंकि मूलाधार कामऊर्जा का केन्द्र है और अनाहत प्रेम ऊर्जा का, भाव ऊर्जा का। प्रेम के प्रवाह में काम ऊर्जा का विशुद्धिकरण हो जाता है।

इस चक्र का गुण है स्पर्श। सोचो तो सही कुदरत की माया कैसी रहस्यमयी है! शरीर से स्पर्श होते ही हृदय पहचान लेता है कि स्पर्श कैसा है? स्पर्श में क्या भाव है?

आहत और अनाहत दो शब्द हैं। मैंने “ध्यान और अनाहत नाद” ग्रंथ में इसे विस्तार से समझाया है। यहाँ संक्षेप में फिर से कहूँगी कि किसी भी प्रकार की चोट से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उस ध्वनि को आहत नाद कहते हैं। बिना किसी चोट से अर्थात् जो ध्वनि स्वयंभू

नादान्वित होती रहती है, उसे अनाहत नाद कहते हैं।

कुदरत की कैसी करामत है कि बिना किसी प्रकार की चोट के भी हृदय धबकता रहता है! उसकी धड़कनों की ध्वनि लगातार नादान्वित होती रहती है। इसीलिए इस चक्र को अनाहत चक्र कहा।

वैसे तो शरीर के सभी चक्र स्वयं की शक्ति से ही कार्यावित हैं। परंतु हृदय प्रेम केन्द्र होने से समग्र मनुष्य के लिए, उसका विशेष महत्व है। मनुष्य ने आज तक सबसे ज्यादा ध्यान दिया हो तो पहले मूलाधार के कार्यक्षेत्र पर और बाद में अनाहत चक्र पर।

फिर भी कुछ लोग अपने दिल के प्रति इतने बे-ध्यान रहते हैं कि दिल का दौरा पड़ने पर उन्हें अचानक पता चलता है कि जीवन के महत्वपूर्ण केन्द्र पर ध्यान देना चूक गए थे। ऐसी दुर्घटना से ही उन्हें बोध होता है कि प्रेम केन्द्र की भूमिका क्या है? कितना महत्व है? और उसकी कितनी उपेक्षा हुई?

प्यारे भक्तो!

मुख और नासिका से गतिशील प्राणवायु का स्थान अनाहत चक्र है। जैसे मैंने पहले कहा वैसे स्पर्श तनमात्रा से उत्पन्न स्पर्श की शक्ति त्वचा उस केन्द्र की ज्ञानेन्द्रिय है। उसकी कर्मेन्द्रिय हाथ है जिसमें वायुतत्त्व से उत्पन्न पकड़ने की विशेष शक्ति प्रवाहित हो रही है।

प्यारे साधको!

जहाँ से ॐकार ध्वनि सहज ही स्फुरित हो रही है। जिस ध्वनि को ऋषि मुनि शब्द ब्रह्म कहते हैं ऐसे अनाहत चक्र में स्वयं रुद्र का वास है। और ॐकार स्वयं शिव का स्वरूप है।

शब्दम् ब्रह्मेति तं प्राह साक्षात् देवः सदाशिवः

अनाहतेषु चक्रेषु स शब्दः परिकीर्त्यते

(परापरिमल ललोलासः)

प्यारे साधको!

तंत्र ग्रंथ के अनुसार इस चक्र पर चेतना को केन्द्रित करने से मनुष्य असाधारण शक्ति को प्राप्त करता है। जैसे कि वाणी पर काबू पाना, व्यवहार में भावपूर्णता, सरलता आदि।

लोग कहते हैं कि दिल की बात होठों पर आ ही जाती है परंतु जिसने ध्यान के द्वारा हृदय को संयमित कर लिया है उसका सहज ही वाणी पर काबू आ जाता है। और ध्यान द्वारा जिसके हृदय का शुद्धिकरण हो गया है उसकी वाणी में ओजस्विता, तेजस्विता, स्पष्टता, सत्यता आदि गुणों का उतरना भी स्वाभाविक है।

भक्ति मार्ग में विकसित होने के लिए इस चक्र पर ध्यान करना सर्वश्रेष्ठ है। शिवसार तंत्र कहता है कि वहाँ से उत्पन्न होने वाली ध्वनि ॐ त्रिगुणमयी है और स्वयं शिव का स्वरूप है।

प्यारे साधको!

अपने हृदय पर ध्यान करने से आप अन्य के हृदय की बातों को भी सहजता से जान पाएंगे और समझ पाएंगे। और उसके साथ न्याय कर पाएंगे। आरंभ में ध्यान न भी लगे तो भी ध्यान के लिए बैठते रहो क्योंकि धीरे धीरे हृदय स्थान का शुद्धिकरण होकर अपने भीतर ही संशय समाधान की प्रक्रिया हो जाएगी। सारे समाधान भीतर से ही आएंगे। आपका हृदय ही आपका गुरु या सच्चा मार्गदर्शक बन जाएगा।

अपने दिल को जीतने वाला हर इन्द्रियों को जीत सकता है। जिसका दिल बेकाबू हो जाता है उसका शरीर-रथ अंजान और खतरनाक

रास्तों पर बिना सारथी के घोड़ों के हाथ में रहकर विनाश की ओर चल पड़ता है।

प्यारे साधको!

अनाहत चक्र की उपासना करने वालों में कवित्व शक्ति खिल उठती है। काव्य शास्त्र के ज्ञाता, रसज्ञ और भावनाशील होते हैं। मेरे अनुभव भी कहते हैं कि भाव के बिना काव्य निरर्थक है।

दोस्तो, हमारा हृदय भाव से भरा एक अमृत कुंभ है। उसमें से निकलकर जो शब्द और कविता आएंगे वे अमर हो जाएंगे।

तो अब उतरो ध्यान में। तीन महीने से लेकर तीन साल तक लक्ष्य देते रहो अपने हृदय स्थान के प्रति। झांको अपने भीतर। आपको उस अनाहत चक्र का अनुभव होने लगेगा। स्थिर हो जाओ उस अनुभूति में। उसकी सूक्ष्मता में खो जाओ और बन जाओ शिवरूप।



धारणा - 174

विशुद्ध चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 174

चक्र विशुद्ध पर ध्यान धरि साधक, पूर्ण शुद्धि के बनो आराधक ॥

ध्यान विधि - 174

विशुद्ध चक्र पर ध्यानस्थ
होकर पूर्णशुद्धि की
अवस्था को प्राप्त कर लो।



इस स्थान का नाम
 विशुद्ध चक्र क्यों दिया गया?
 शास्त्र कहते हैं कि इस
 स्थान पर जाग्रति के साथ
 चित्त को स्थिर करने से
 मन निरभ्र आकाश की तरह
 विशेष रूप से शुद्ध हो जाता
 है। कुछ मनीषियों का ऐसा
 मत भी है कि वाणी के द्वारा
 मनुष्य अपने मन के भावों
 को विशेष रूप से अभिव्यक्त
 कर सकता है। और वाणी
 मनोभाव को विशुद्ध करके
 प्रगट कर सकती है इसलिए
 इस चक्र का नाम विशुद्ध
 चक्र पड़ा।

प्यारे साधको!

कण्ठ प्रदेश में बसा हुआ विशुद्ध चक्र मनुष्य को विशेष जीवंत बना देता है। क्योंकि वाणी से हृदय के भावों की अभिव्यक्ति होती है। और कंठ में स्थित स्वरपेटी से वाणी प्रगट होती है। स्वर के बिना व्यंजन, वाणी, संगीत और सृष्टि सबकुछ सूना है, निरर्थक है। यह चक्र सोलह स्वरों का स्थान है।

प्यारे भक्तो!

तंत्र शास्त्र में भाषा विज्ञान से लेकर शरीर विज्ञान तक के कई विषयों का समावेश हो जाता है। परंतु मनुष्य जब तंत्र की विधियों में उतरे तभी इस सत्य का अनुभव होता है।

तंत्र मनुष्य की समझ और सुख के विकास के लिए खोजा गया। अगर मनुष्य उसका सम्यक उपयोग करना सीख ले तो वह उत्तम जीवन और भयहीन मृत्यु को प्राप्त कर सकता है।

विशुद्ध चक्र का गुण शब्द है और वह उदान वायु का स्थान है। जो वायु ऊपर की ओर गति करती है। उसकी ज्ञानेन्द्रिय शब्द तनमात्रा

से उत्पन्न श्रवण शक्ति अर्थात् कान है और कर्मेन्द्रिय आकाश तत्त्व से उत्पन्न वाणी है।

प्यारे साधको!

इस स्थान का नाम विशुद्ध चक्र क्यों दिया गया? शास्त्र कहते हैं कि इस स्थान पर जाग्रति के साथ चित्त को स्थिर करने से मन निरभ्र आकाश की तरह विशेष रूप से शुद्ध हो जाता है। कुछ मनीषियों का ऐसा मत भी है कि वाणी के द्वारा मनुष्य अपने मन के भावों को विशेष रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। और वाणी मनोभाव को विशुद्ध करके प्रगट कर सकती है इसलिए इस चक्र का नाम विशुद्ध चक्र पड़ा।

इस चक्र पर ध्यान करने का अर्थ यह नहीं करना है कि स्थूल कंठ पर ध्यान करना। ध्यान प्रक्रिया कभी स्थूल हो ही नहीं सकती। वह स्वयं एक सूक्ष्म प्रक्रिया है। परंतु विशुद्ध चक्र पर ध्यान करने का अर्थ है – वाणी के उच्चरित होने के पहले सजगता प्राप्त करना। वाणी मैत्री और शत्रुता का मूल बन सकती है। वाणी जीवन और मृत्यु का कारण बन सकती है। वाणी प्रतिष्ठा और पतन में निमित्त बन सकती है।

ध्यान के द्वारा जो जाग गया है उसका महाज्ञान में प्रवेश हो जाता है। ऐसे साधक को सदैव बोध जगा रहता है कि मौन के वक्त मौन और बोलने के वक्त बोलना। सिर्फ आवश्यक शब्दों को बोलने की कला वह हस्तगत कर लेता है। इस ज्ञान से अपने और दूसरों के मन की शांति बनी रहती है और हम वाणीगत दोषों से बच सकते हैं। न किसीकी क्षमा मांगने की बारी आती है और न आपके द्वारा किसीका अपमान होता है, न किसी के द्वारा आपका।

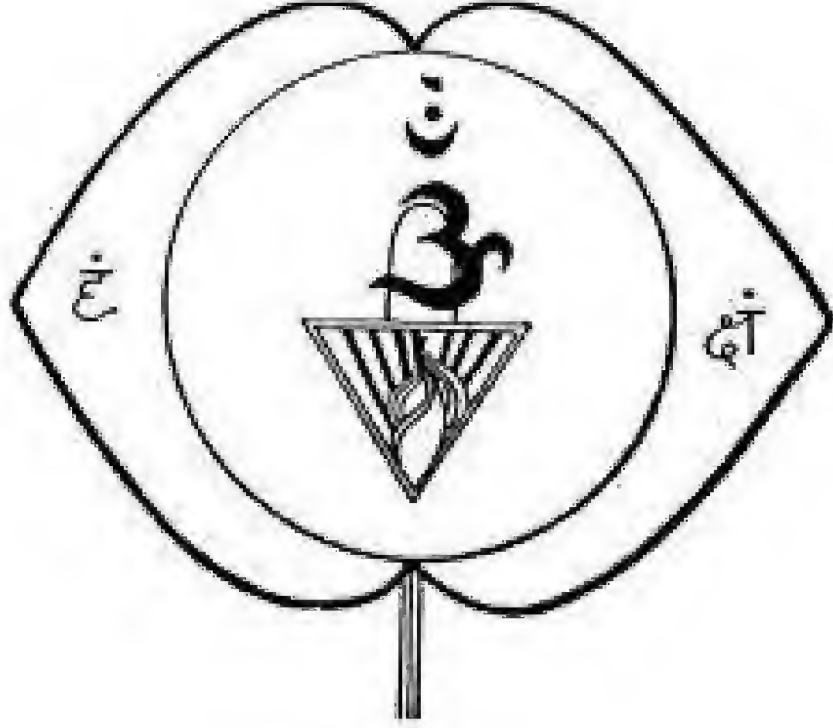
दोस्तो! सम्यक् वाणी पर बुद्ध ने बहुत जोर दिया है। क्योंकि

सम्यक वाणी बोलने वाले के लिए पीछे से पछताने की बारी नहीं आती है। न कभी आपकी मूर्ख में गिनती होती है। चित्त शांत रहने से आप कई रचनात्मक कार्य कर सकते हो। वाणी की शक्ति से बचने से ऊर्जा भी बचती है जिससे आप दीर्घ जीवी बन सकते हैं और आपका अंतर शोकहीन अवस्था का अनुभव करता है। विशुद्ध चक्र पर ध्यान करने से सजगता इतनी बढ़ जाती है कि आप औरों के मन को आसानी से पढ़ लेते हैं। वाणी पर काबू आने से कवित्व शक्ति का विकास होता है और शांति बढ़ती है।

प्यारे साधको!

कम से कम तीन महीने से लेकर तीन साल तक सजगता से इस साधना में उतरो और ध्यान करते करते महाज्ञान की अवस्था में प्रवेश कर लो।





धारणा - 175

आज्ञा चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 175

आज्ञा चक्र अति उत्तम भाई, अति सूक्ष्म अनेक फल दायी॥

ध्यान विधि - 175

आज्ञाचक्र का ध्यान करना
सर्वोत्तम है। आपकी समग्र
चेतना को वहाँ स्थिर
करके सफलता को
उपलब्ध हो जाओ ।



पा

श्वात्य विज्ञान के अनुसार ये दो पंखुड़ियाँ शरीर की दो महत्वपूर्ण ग्रंथि पीनियल और पिट्यूटरी समझनी चाहिए। ये दो ग्रंथियाँ आज्ञा चक्र से ही शक्ति प्राप्त करके शरीर में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। इन दोनों ग्रंथियों का संबंध निद्रा, मानसिक स्वास्थ्य और स्त्री-पुरुष में बीज को जन्म देने वाले रसायन इस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रोन के उत्पादन से है।

प्यारे साधको!

आज्ञा चक्र के संकेत के लिए शरीर रचना के अनुसार स्थूल स्थान बताया जाए तो वह है मेड्यूला प्लेक्सस। आज्ञा चक्र का स्थान दोनों भ्रूओं के मध्य में भ्रुकुटी के भीतर है। उसकी आकृति दो पंखुड़ियों वाले कमल के समान बताई है।

पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार ये दो पंखुड़ियाँ शरीर की दो महत्वपूर्ण ग्रंथि पीनियल और पिट्यूटरी समझनी चाहिए। ये दो ग्रंथियाँ आज्ञा चक्र से ही शक्ति प्राप्त करके शरीर में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। इन दोनों ग्रंथियों का संबंध निद्रा, मानसिक स्वास्थ्य और स्त्री-पुरुष में बीज को जन्म देने वाले रसायण इस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रोन के उत्पादन से है।

उसके बीज, गति और लोक समझने जैसे हैं। उसका तत्व बीज ॐ है, गति नाद है और लोक तपः है। इससे स्वतः सिद्ध होता है कि यह तपस्वियों के लिए महत्वपूर्ण केन्द्र है। आज्ञा केन्द्र पर ध्यान करना एक पूर्ण तपस्या है।

एक बार जो इस केन्द्र पर ध्यान स्थिर हो गया तो देह, मन,

बुद्धि आदि सबकुछ आपकी आज्ञा में रहते हैं। इस चक्र का नाम ही आज्ञा चक्र है। इसका अध्यात्म के साथ साथ मनोवैज्ञानिक कारण भी है।

शरीर की महत्वपूर्ण तीन नाड़ियाँ हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्णा – ये तीनों इस स्थान पर मिलती हैं। जिसके कारण योग शास्त्र इस स्थान को युक्त त्रिवेणी भी कहता है। सिम्पेथेटिक और पेरासिम्पेथेटिक नर्व अर्थात् सूर्य नाड़ी और चंद्र नाड़ी जो शरीर के तापमान और चित्त को उत्तेजित और शांत करने वाली दो प्रमुख नाड़ियों के उपरांत संपूर्ण स्पाइनल कोर्ड अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी जो मनुष्य के शरीर के पूरे चेतना प्रवाह का आधार है। जिसे योग की भाषा में गंगा, जमुना और सरस्वती कहते हैं। कहने का हेतु यह है कि मनुष्य का संपूर्ण देहिक और मानसिक तथा भावनात्मक संतुलन का यह एक आधारभूत चक्र है। अगर इस चक्र पर एक बार आपका ध्यान स्थिर हो गया तो आप अपार आनंद शांति और समाधि का अनुभव कर पाएंगे।

साधारण मनुष्य जब उत्तेजित हो जाता है अथवा उसे कोई उकसाता है तब वह आवेशपूर्ण अवस्था में कुछ भी कर देता है। भावनात्मक आवेगों में बहते हुए मनुष्य को विवेक बोध नहीं रहता। परंतु आज्ञा केन्द्र पर ध्यान करने वाला साधक एक ही विधि के द्वारा नीचे के सभी केन्द्रों का संतुलन कर पाता है। और उसका निरक्षर विवेक जाग उठता है।

इडा भागीरथी गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।

तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णाख्या सरस्वती॥

त्रिवेणीसंगमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते।

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(ज्ञानसंकलिनी-तंत्र)

अर्थात् : इडा को गंगा और पिंगला को यमुना तथा इन दोनों के मध्य में जाने वाली नाड़ी सुषुम्णा को सरस्वती कहते हैं। इस त्रिवेणी का जहाँ संगम होता है, उसे तीर्थराज कहते हैं। इसमें स्नान करके सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं।

आज्ञा चक्र अग्नि नेत्र, तीसरा नेत्र, शिव नेत्र और ज्ञान नेत्र आदि नामों से जाना जाता है। इसे तंत्र ऋषि दिव्य दृष्टि का यंत्र मानते हैं।

प्राणतोषिणी तंत्र में ललनासंज्ञक चक्र, सोम चक्र, ललाट चक्र, मानस चक्र आदि चक्रों का वर्णन मिलता है परंतु इन सभी चक्रों का समावेश इस ग्रंथ में बताए हुए सात चक्रों में हो जाता है।

प्यारे साधको!

मेरा हमेशा एक सूचन रहा है कि शब्दावलियों में ज्यादा मत उलझो। इसे थोड़ा बहुत समझ लो क्योंकि विशेष शब्दावली से भाषा और रहस्य के तौर पर ज्यादा उलझते जाओगे। तंत्र शास्त्र की भाषा और आज के मनुष्य की भाषा के बीच काफी फासला है। इसलिए केवल हार्द को समझकर साधना में लग जाओ। किसी भी केन्द्र से जाग सकते हो तो जाग लो। सत्य को समझ लो। शांति को प्राप्त कर लो। ग्रंथों की प्राचीन भाषा की भरमार में पड़कर कुछ भी न समझ पाओ और सत्य को चूक जाओ इससे तो अच्छा है कि हार्द को समझ जाओ और सत्य को पा लो।

प्यारे साधको!

मैंने काफी कोशिश की है कि बोलचाल की भाषा में ही आप ध्यान विधियों को प्राप्त कर लो। फिर भी जहाँ अनिवार्य लगा वहाँ कुछ

पुरातन शब्दों का प्रयोग करना पड़ा। फिर भी जो शब्द समझ में न आए वहाँ से आगे बढ़ जाना है। मैंने एक ही बात को अनेक तरीकों से समझाने का प्रयत्न किया है। अगर आपको समझना ही है तो कहीं न कहीं से तो समझ लेंगे।

प्यारे साधको!

आज्ञा चक्र में तीनों नाड़ियाँ इडा, पिंगला और सुषुम्णा परस्पर में मिलती हैं। जैसे मैंने पहले बताया कि योगीजन उसे गंगा, जमुना, सरस्वती की उपमा देते हैं। तीर्थराज प्रयाग में जैसे तीनों नदियों का संगम होता है वैसे ही यहाँ शरीर के तीनों चेतना प्रवाह परस्पर मिलते हैं। और योगियों ने आज्ञा चक्र को तीर्थराज कहा है। अर्थात् भीतरी चक्रों पर ध्यान करना यह एक आंतरिक यात्रा है, आध्यात्मिक यात्रा है, सजगता की यात्रा है और उस यात्रा के लिए सभी चक्र पवित्र तीर्थ क्षेत्र समान हैं। और आज्ञा चक्र सर्वोत्तम तीर्थ है। अधिकतर तांत्रिक एवं योगी आज्ञा केन्द्र पर लक्ष्य को स्थिर करने पर ज़ोर देते हैं।

मनुष्य औरों को आज्ञा दे सकता है परंतु स्वयं का मन अपनी आज्ञा में नहीं है। उल्टा मन मनुष्य को आदेश देता रहता है और मनुष्य उसके अनुसार दौड़ता रहता है।

मैं कहती हूँ कि आज्ञा चक्र पर लक्ष्य को स्थिर करके एक बार अगर आपने शांति में प्रवेश कर लिया तो फिर आप मन के गुलाम नहीं होंगे। परंतु उस पर स्वामित्व प्राप्त कर लेंगे। दोस्तो! भारत में संतों के लिए स्वामी शब्द प्रयुक्त होता है। स्वामी का अर्थ क्या है? जिसने स्वयं के मन इन्द्रियाँ, शरीर, बुद्धि, अहंकार आदि पर अपना आधिपत्य प्राप्त कर लिया। स्वामित्व को प्राप्त कर लिया। अब मन और इन्द्रियाँ

सेवक मात्र रह गई इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।

प्यारे साधको!

तो अब उतरो इस विधि में। आपकी समग्र ऊर्जा को भ्रूमध्य के बीच में स्थिर करके आंखों को मूंदकर चैतन्य शक्ति पर ध्यान करो। कम से कम तीन महीने से लेकर तीन साल तक। तीन वर्ष के बाद आप अपने भीतर एक नए मनुष्य का अनुभव करोगे, जो परम स्वतंत्र, प्रसन्न और शांत होगा।





धारणा - 176

सहस्रार चक्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 176

सहस्रार चक्र पर ध्याना, देत समाधि सुख शांति नाना॥

ध्यान विधि - 176

सहस्राक्ष चक्र पर ध्यानस्थ
होकर आत्मसुख, शान्ति
और समाधि के विश्व में
प्रवेश कर लो ।



अमरत्व का अर्थ
 क्या है? अमरत्व का अर्थ
 ऐसा मत करना कि साधक
 कभी मरेगा नहीं कि उसका
 शरीर कभी छूटेगा नहीं परंतु
 अमरत्व का अर्थ है जन्म
 और मृत्यु दोनों से सदा
 सदा के लिए मुक्त हो जाना।
 जो जन्मता है उसकी मृत्यु
 अनिवार्य है। परंतु जो जन्म
 को ही मिटा देता है उसे
 मारने का कोई उपाय नहीं
 है।

प्यारे साधको!

तंत्र कहता है कि तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरंध्र के ऊपर सर्वशक्तियों का केन्द्र है। जिसे सहस्रार चक्र कहते हैं। वहाँ परब्रह्म अपनी महाशक्ति के साथ निवास करता है।

दोस्तो, इस चक्र पर ध्यान करने से मुक्ति की उपलब्धि होती है। इस केन्द्र पर ध्यान करने वाले का अमरत्व में प्रवेश हो जाता है।

अमरत्व का अर्थ क्या है? अमरत्व का अर्थ ऐसा मत करना कि साधक कभी मरेगा नहीं कि उसका शरीर कभी छूटेगा नहीं परंतु अमरत्व का अर्थ है जन्म और मृत्यु दोनों से सदा सदा के लिए मुक्त हो जाना। जो जन्मता है उसकी मृत्यु अनिवार्य है। परंतु जो जन्म को ही मिटा देता है उसे मारने का कोई उपाय नहीं है।

प्यारे साधको!

पतंजलि समाधि के दो प्रकार कहते हैं। संप्रज्ञात समाधि और असंप्रज्ञात समाधि। संप्रज्ञात समाधि में साधक का शांति और ज्ञान में प्रवेश होता है परंतु सम्यक विचार, वितर्क, आनंद और अस्मिता का

बोध रहता है जबकि असंप्रज्ञात समाधि में किसी भी प्रकार के अर्थात् उचित अथवा उपयोगी विचार, तर्क आनंद का बोध या “मैं हूँ” अथवा “मेरी उपस्थिति” ऐसा कोई भाव नहीं रहता। जिसे बुद्ध महाशून्यावस्था कहते हैं। ऐसी अवस्था में साधक का जीतेजी निर्वाण में प्रवेश हो जाता है।

प्यारे साधको!

सहस्रार चक्र को शून्य चक्र भी कहते हैं अर्थात् वहाँ शून्यता के सिवाय कुछ नहीं बचता। सहस्रदल कमल को प्रतीक के रूप में समझे तो ऐसा अर्थ हो सकता है कि जिस साधक के सहस्रार चक्र में कुण्डलिनी शक्ति का आविर्भाव हो गया है उसका हृदय सहस्र पंखुड़ियों में खिले हुए कमल की भांति खिल उठता है। तेजस्विता और प्रबुद्धता उसके रोम रोम से बरसती है। उसके सानिध्य में शांति और प्रसन्नता का अनुभव होता है और साधक का समग्र अस्तित्व आकर्षक बन जाता है।

प्यारे साधको!

अपनी शक्ति को सहस्रार तक सक्रिय करने के लिए ध्यान का शुभ संकल्प करो, तीन महीने से लेकर तीन वर्ष तक। एक के बाद एक एक चक्रों को विशेष रूप से जगाते हुए पहुंचो सहस्रार चक्र तक और असंप्रज्ञात समाधि में प्रवेश कर लो।

विभाग : 21

पंचकोष पर आधारित ध्यान विधियाँ



धारणा - 177

अन्नमय कोष ध्यान

ध्यान सूक्ति - 177

अन्नमय कोष ध्यान से साधक, उदर शुद्धि बहु रोग का नाशक ॥

ध्यान विधि - 177

अन्नमय कौष पर ध्यानस्थ
होने से देह के प्रति
सजगता और स्वास्थ्य को
प्राप्त करें ।



ॐ अन्नमयकोष से
जीवन की यात्रा का आरंभ
होता है। अन्न जीवन का
आधार है। हमारे ऋषि-
मुनियों ने अन्न को ब्रह्म
कहा है। अन्न से देह का
गठन हुआ है। मैं कहती हूँ
कि अन्न को ब्रह्म मानकर
भोजन के वक्त उसपर ध्यान
करो। शरीर के लिए मैं कई
बार कह चुकी हूँ कि वह
ईश्वर का मंदिर है।

प्यारे साधको!

आप कौन हैं? इस प्रश्न का शाश्वत जवाब तो आपको तभी मिल पाएगा कि जब आपके परम अस्तित्व में से यह प्रश्न उठे। मैंने एक भजन लिखा है -

तेरी पूजा प्रार्थना मैं न जानुं, आराधना भी अभीसे न जानुं।
मैं कौन हूँ पहले इतना तो जानुं, किसने बनाया उसे पहचानुं॥
मैं कितने जनम से भटकता हुआ, तूफानों में कितने अटकता हुआ।
जमन और मरण में लटकता हुआ, मैं आया कहां से इतना तो जानु।
किसने बनाया उसे पहचानुं... तेरी...
ये चमड़ी के तंबु में डेरा मेरा, है पहला कि आखिर ये फेरा मेरा।
अंधेरों से कब हो सवेरा मेरा, मैं कब तक रुकूंगा इतना तो जानुं।
किसने बनाया उसे पहचानुं.... तेरी ...
अल्लाहू अकबर कहूंगा मैं फिर, काशी और काबा रटूंगा मैं फिर।
रहीम राम पे मैं लडूंगा भी फिर, जो बैठा है भीतर उसे पहले जानुं।
किसने बनाया उसे पहचानुं.... तेरी ...

ये धरती क्यों मेरा ठिकाना बना, ये माया क्यों मेरा बिछाना बना।
 क्यों “मोहिनी” तेरा फ़साना बना, असल गाँव मेरा कहाँ है मैं जानूँ।
 किसने बनाया उसे पहचानूँ.... तेरी ...
 तेरी पूजा प्रार्थना मैं न जानुं, आराधना भी अभीसे न जानुं।
 मैं कौन हूँ पहले इतना तो जानुं, किसने बनाया उसे पहचानुं।।
 किसने बनाया उसे पहचानूँ.... तेरी ...

मैं कौन हूँ? मैं यहाँ क्यों-कैसे? इस शरीर को धारण करने का उद्देश्य क्या? मैं यहाँ कब तक? मेरा असल स्थान कहाँ?..... दोस्तो, ये सारे प्रश्न वास्तविक हैं। देखने में दार्शनिक प्रश्न लगते हैं परंतु ये दार्शनिक कम हैं और आध्यात्मिक ज्यादा। आपके अंतर में जब ऐसे प्रश्न उठने लगें तब समझना कि आप अब संसार मार्ग से मोक्ष मार्ग पर आ रहे हैं। क्योंकि ये सारी प्रश्न आपके अस्तित्व में से पैदा हुए प्रश्न हैं। प्यारे साधको!

यह शरीर देखने में एक लगता है परंतु वास्तव में पंचकोष का समूह है। एक के बाद एक परतें हैं इस शरीर में। उन परतों के पार क्या है? उन परतों के पार है शुद्ध आत्मतत्त्व, परम प्रकाश, आत्मज्योति; वह प्रकाश पंचभूत के शरीर में प्रवेश करता है। वह प्रकाश ही परमात्मा है। यह देह तो उस परम देवता का देवालय है।

प्यारे दोस्तो!

कोष के कई अर्थ हैं। जिनमें से कुछ अर्थ समझने योग्य हैं। जैसे कि पात्र, आवरण, खजाना, ढक्कन, भंडार, दौलत इत्यादि।

प्यारे साधको!

मनुष्य शरीर में पंचकोष है। एक अर्थ में वे सब शुद्ध आत्मतत्त्व

के लिए आवरण रूप हैं। और एक अर्थ में उस तत्व के पोषक। हकारात्मक अर्थ में वह मनुष्य को मिला एक कुदरती खजाना है, भंडार है। मैंने कहीं लिखा है -

तेरे छोटे से दिल में कई कोहीनूर चमकते हैं।

खदानें सोने चांदी समन्दर भी हैं मोती भी॥

दोस्तो, अन्नमयकोष से जीवन की यात्रा का आरंभ होता है। अन्न जीवन का आधार है। हमारे ऋषि-मुनियों ने अन्न को ब्रह्म कहा है। अन्न से देह का गठन हुआ है। मैं कहती हूँ कि अन्न को ब्रह्म मानकर भोजन के वक्त उसपर ध्यान करो। शरीर के लिए मैं कई बार कह चुकी हूँ कि वह ईश्वर का मंदिर है। इस संदर्भ में मैंने एक ज्ञान पूर्ण भजन लिखा है -

मंदिर में जाने वालो, तुम खुद भी तो इक मंदिर हो
पत्थर में बैठा है प्रभु तो, तुम तो कितने सुंदर हो

पल दो पल की पूजा क्या है, हर क्षण खुदको याद करो
मूर्ति तो बोले ना बोले, तुम तो ज़िंदा ईश्वर हो
मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो

फूल चढ़ाया भोग लगाया, मंदिर में जीवन को गँवाया
मानव तुमने मन को मनाया, ना सोचा क्या भीतर हो
मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो

दैरो हरम पे भटका हुआ तुम, जनम जनम से भटक गया
'मोहिनी' मुक्त बनो और जानो, तुम तो मस्त कलंदर हो
मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो
पत्थर में बैठा है प्रभु तो, तुम तो कितने सुंदर हो।

ऊपर से हाड-मांस का पुतला दिखाई देने वाले शरीर में कितने प्रकार की शक्तियाँ कार्यरत हैं! काफी लोगों ने शरीर को आवरण कहा है। कुछ लोग साधना मार्ग में शरीर को बाधा रूप मानते हैं परंतु मेरी दृष्टि से – यह आवरण ही मुक्ति का माध्यम है। हमने शरीर धारण नहीं किया होता तो साधना का सवाल ही नहीं उठता। दोस्तो! यह आवरण अद्भुत है। यह आवरण सुंदर भी है और सत्य की प्राप्ति का साधन भी। देह भले असत रहा, हमारे तत्त्वचिंतक शरीर को नाश्वंत कहते हैं और यह एक वास्तविकता भी है परंतु उस असत से ही सत् की आराधना होती है। यह मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य है।

अन्नमय कोष के अभाव में आप आनन्दमय कोष तक कभी नहीं पहुंच सकते। इसलिए मैं कहूँगी कि अन्नमय कोष पर भी ध्यान करो। अन्न को ध्यान का विषय बना दो। वहाँ से आनंद के बीजारोपण का आरंभ हो जाएगा। कुछ योगविद् दृश्यमान शरीर को अन्नमय कोष कहते हैं। क्यों? क्योंकि अन्न से बने हुए रज और वीर्य से शरीर की उत्पत्ति हुई है। जन्म के बाद शरीर अन्न से बढ़ता है। इसलिए उसे अन्नमय कहा है। अन्न के बिना जीवन संभव ही नहीं है। तो ऐसे अन्नमय कोष पर ध्यान क्यों न करें? मैंने एक कविता लिखी है। वह एक अर्थ में अन्न और अन्नमयकोष की स्तुति है। –

गेहूं को किसान बोता है
उगाता है पकाता है और रखवाली भी करता है।
क्योंकि गेहूं की बालि में जिन्दगी है।
देवों के आह्वान में गेहूं का स्थापन
गेहूं के अभाव में अच्छे अच्छों का उत्थापन

गेहूँ को आदमी ढोता है खाता है और बचाता भी है।
क्योंकि गेहूँ की बालि में जिन्दगी है।
गेहूँ में राजनीति गेहूँ में घोटाले
काला बाजार के लिए गेहूँ के गोडाउन पे ताले
गेहूँ को देश आयात करता है बेचता है
और कभी कभी खुद बिकता भी है।
क्योंकि गेहूँ की बालि में जिन्दगी है।
दूधपाक भी फीका है गेहूँ के मालपूए के बिना
गेहूँ के लिए बिकती है सरस्तवती की वीणा
तुलिका हो या तलवार
सबको कभी कभी गेहूँ के पड़ते लाले हैं,
क्योंकि गेहूँ की बालि में जिन्दगी है।
गेहूँ से पैदा हुए नर नारी नपुंसक
गेहूँ से चलती है दुनियां आजतक
गेहूँ से युद्ध गेहूँ के लिए शांति प्रस्ताव
गेहूँ ने सभी पाप और पुण्य को पाला है
क्योंकि गेहूँ की बालि में जिन्दगी है।
गेहूँ की वजह से “मोहिनी” जप-तप, होम-हवन,
गेहूँ को कौन ब्राह्मण कौन यवन!
गेहूँ ने कभी ऊंच-नीच या मज़हबों का नहीं किया भेद
ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी अन्नपूर्णा के हवाले हैं
क्योंकि गेहूँ की बालि में जिन्दगी है।
हमारे उपनिषद्कार भी सहनाववतु सहनोभुनक्तु... का जो भाव

करते हैं, उसमें अन्न की ही उपासना है। जीव को जीवन देने के लिए ईश्वर ने कैसी अद्भुत व्यवस्था की!

तूने रोटी पकाई उसने रोटी से पकाया खून।

अब तो तू ठान ले उस राजे हस्ति के कदम छूना॥

दोस्तो, शरीर निंदनीय नहीं है। धर्मों में टांग अड़ानेवाले कुछ अबूध लोगों ने शरीर की खूब निंदा कर ली। अब उन भ्रमजालों में से बाहर आ जाओ। जाग जाओ। ध्यान में उतरो। वास्तविकता को समझो और स्वीकारो। दृश्य की निंदा करके अदृश्य को नहीं पा सकोगे क्योंकि संपूर्ण दृश्य ही उस अदृश्य की लीला भूमि है।

वो करता परवरिश अम्मा की गोदी में उसे तू जान।

वो नन्ही जान अंधेरे में चैन सुकून पाती है॥

माँ के गर्भ में घटती कुदरत की करामत तो देखो! एक अन्नमय कोष से दूसरा अन्नमय कोष पलता है। और स्वयं परमात्मा सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके उसमें पुष्ट हो रहे हैं।

एक अर्थ में अन्न भी ब्रह्म है, तू भी ब्रह्म है, अन्य भी ब्रह्म है और जगत भी ब्रह्म है।

ये सारे खेत खलिहानों में उसीको ही लहरता देख।

वो कैसे छिप के बैठा है हरेक गेहूँ की बालि में!।

एक चमड़े की खोली में कितनी हैं खिड़कियाँ तू झाँक!

नहीं दरवाज़ ना दीवार फिर भी सब सलामत है॥

शक्ल दिखती नहीं उसकी, लीला चलती रहती है।

अक्ल ना काम आती “मोहिनी” सिर्फ अहसास तू कर ले॥

प्यारे भक्तो!

अन्नमयकोष पंचभूतों से बना है। उस स्थूल पंचमहाभौतिक शरीर और इन्द्रियों में प्रवेश करके रहने वाले आत्मतत्त्व को वेद “विश्व” नाम से जानते हैं। इसलिए मैं कहती हूँ कि जगत भी ब्रह्म है। जहाँ जहाँ सृष्टि है वहाँ वहाँ सृष्टा है। जहाँ जहाँ सर्जन है वहाँ वहाँ सर्जक की छवि झलक रही है। इस सत्य को जो देख नहीं सकता है वह अज्ञानी है।

अन्नमय कोष पर ध्यान करने के लिए मैं इसलिए ज़ोर दे रही हूँ कि सोचो तो सही! अन्नमय कोष कितना अब्हुत होगा कि कालातीत, अविभक्त, अजर, अमर, अविनाशी, आत्मतत्त्व अन्नमय कोष में अर्थात् जो जन्म, मृत्यु, जरा और विविध प्रकार के दुःखों से युक्त आवरण में प्रवेश करता है, रहता है और उसमें रहकर विविध प्रकार की लीला करना पसंद करता है।

प्यारे साधको!

आपको अगर स्वयं को जानना है तो शरीर की अवज्ञा करके नहीं जान पाएंगे। शरीर तो साधन है। शरीर तो द्वार है। उसके द्वारा ही आप आगे बढ़ सकते हैं। प्रवेश कर सकते हैं। एक आवरण से ही दूसरे आवरण को हटाना है।

दोस्तो, शरीर में अन्नमय कोष पर ध्यान करो। भोजन के वक्त भोजन को ध्यान बना दो। मानलो कि भोजन ब्रह्म है और चिंतन करो कि शरीर ब्रह्म द्वार है और ब्रह्मालय है। यह शरीर ब्रह्म की लीलाभूमि है। नाश्वंत होने पर भी अविनाशी को पाने का माध्यम है। मैं अन्नमय कोष हूँ और उसके आगे भी कुछ हूँ। इसके द्वारा ही मुझे विकसित होना

हैं और धीरे धीरे रूपांतरित होते होते परिशुद्ध और आवरण मुक्त अवस्था में पहुंचना है। अन्नमय कोष से विकसित होकर महाचेतना में विलीन होना मेरा अंतिम विकास होगा।

प्यारे साधको!

अन्नमय कोष पर ध्यान करके पहले मनन करने योग्य एक सपाट अभिव्यक्ति युक्त मेरी एक कविता पेश कर रही हूँ। पहले उसे पढ़ना, समझना फिर अन्नमय कोष पर ध्यान करने का मज़ा ही कुछ और होगा। वह मज़ा मेरे द्वारा विधि बताने से नहीं होगा परंतु आपकी समझ में से प्रगट हुआ होगा।

रोटी जग में है मोटी भले दिखती हो छोटी
राजा रंक या लंगोटी, सबको ही पाले रोटी

अर्थ रोटी का भोजन, जैसा अन्न वैसा मन
पेट रोटी ही समाई वहाँ काम न आवे धन

रोटी से बना शरीर रोटी खाए धीर वीर
भले हो बड़ा शूरवीर रोटी बिना ना खमीर

भले सुंदरी सुरूप या को दासी हो कुरूप
रोटी से ही है स्वरूप ऐसा रोटी का स्वरूप

रोटी सबकी है यार सबको रोटी से है प्यार
भले सर पे उधार रोटी बिना ना उद्धार

सबको रोटी का है भान, इसमें सब है समान
नहीं ज्ञान ना अज्ञान ये है रोटी का विज्ञान

रोटी किसीको न माने, सच झूठ को न जाने
ऊंच नीच लगे खाने, जातिपांति को न छाने

रोटी सबका धरम, ये जीवन का मरम
नहीं भूख में भरम, रोटी करावे करम

रोटी करती है युद्ध, रोटी लड़ती है युद्ध
भले बुद्ध या अबुध, सबको रोटी की है सुध

रोटी खूब ताने खाय, यश अपयश दिलाय
दवाखाना भी दिखाय, जो प्रमाण से ना खाय

रोटी जन्म से मृत्यु तक, रोटी जर्मी से अंबर तक
रोटी कीड़ी से कुंजर तक, रोटी दुनिया है जब तक

रोटी को नहीं है भेद रोटी को बखाने वेद
सब रोटी में है कैद रोटी बिना बड़ा खेद

बड़ी हाथ हो लकीर या लकीरों का फकीर
भले पयगंबर या पीर रोटी बिना है अधीर

रोटी ने लिखे हैं शास्त्र रोटी है बड़ा ब्रह्मास्त्र
रोटी को है क्या सुपात्र, रोटी को कैसा कुपात्र

रोटी खेले राजनीति रोटी दिखावे बहु भिति
देखे ना नीति-कु नीति रोटी करे कूटनीति

रोटी में है सबका प्राण रोटी जिंदगी की जान
पहले रोटी का है मान फिर आन बान शान

रोटी में है बहु सार मानो रोटी से संसार
रोटी करे कारोबार रोटी उतारे भवपार

रोटी रटे रामनाम रोटी से ये जलाराम
रोटी खिलाने का काम करो रिझता है राम

भैया रोटी तो है रोटी भले होये रूखी सुखी
खाए सुखी खाए दुखी खाके होते हैं सब सुखी

रोटी पाप भी करावे रोटी पुण्य भी कमावे
कभी रोटियाँ हसावे कभी रोटियाँ रुलावे

भले कितने हो यंत्र रोटी से चले सब तंत्र
वहाँ नहीं को स्वतंत्र रोटी जगमें महामंत्र

रोटी लांच कभी खाया, कभी रिश्वत खिलाया
काला-सफेद कराया कैसी रोटी की ये माया

रोटी मजूरी कराया रोटी भीख मंगवाया
रोटी अंग बिकवाया रोटी गुलामी कराया

रोटी रामने भी खाया रोटी रावण ने भी खाया
रोटी इसु, महंमद, संग सबको है भाया

रोटी का बड़ा वजन रोटी बिना ना भजन
कैसी शक्ति कण कण ना बिसारी एक क्षण

बच्चे बूढ़े हो या वाम याद करे सुबह हो शाम
राजा महाराजा गुलाम ऐसी रोटी को सलाम

भले शाणा हो जवान या तुरंग सा तूफान
बड़े कर्नल, कप्तान सब रोटी को दे मान
रोटी के अनेक रंग, बने लहु एक रंग
ज्ञानी विज्ञानी हैं दंग शक्ति व्यापे अंग अंग
रोटी जितावे चुनाव रोटी हरावे चुनाव
रोटी लडावे चुनाव रोटी रुकावे चुनाव
कैसा रोटी से ये रिश्ता, उसके सामने सब सस्ता
भले काजु हो या पिस्ता, बिना रोटी नहीं रस्ता
भले रानी महारानी, हो शेठानी नौकरानी
भूख सबकी परेशानी और रोटी महारानी
रोटी रग रग में समाई जो निकाली नहीं जाय
खुशहाली या बेहाली में भी रोटी याद आय
रोटी जबतक रहेगी तबतक दुनिया बसेगी
सुख दुःखको सहेगी बात रोटी की कहेगी
पेट पुण्य है कि पाप, जपे रोटी रोटी जाप
सोचा खूब ना जवाब रोटी दुआ है कि शाप
कभी प्यार से मिली या फिटकार से मिली
कभी यार से मिली कभी उधार से मिली
कभी त्रास दे अपार रोटी खिलाती है मार

कभी डांट फिटकार कभी उपजावे धिक्कार

गई प्यार से जो लाइ पसीने से जो कमाई
सब साथ में जो खाई रोटी 'मोहिनी' को भाई

उसके बंदो ने सेकी है और प्यार से पकी है
ऐसी पाक रोटी कृष्ण और करीम को जंची है

एक बात तो नक्की है सबकी रोटी तो पक्की है
अकल कच्ची है ना पता कहाँ कुदरत की चक्की है

जिसने दिए हैं ये दांत वो रोटी भी देगा साथ
उसको पता है हर बात आदम तेरी क्या औकात

फिर भी रोटी रोटी रोटी इन्सा इच्छा करे मोटी
जीये जिंदगी को खोटी आखिर रोटी तो है रोटी



धारणा - 178

प्राणमय कोष ध्यान

ध्यान सूक्ति - 178

पंच प्राण को प्रबल जे करहिं, कोष प्राणमय जीवन धरहीं॥

ध्यान विधि - 178

शरीर में बहते हुए
पंचप्राणों पर ध्यानस्थ
होकर विशेष और लंबे
जीवन को प्राप्त करें ।



प्राणमय कोष पर
 ध्यान करने का अर्थ है -
 जहाँ कहीं भी प्राणों का
 संचलन देखो कि चेतना को
 वहाँ स्थिर कर दो। दर्शन
 में रवो जाओ। धन्यवाद दो
 उस प्राणशक्ति को जो
 आपके भीतर और बाहर
 एक अद्भुत संचालन कर
 रही है। ध्यान के बिना इस
 सत्य का स्पष्ट अनुभव नहीं
 होगा और अनुभव के बिना
 धन्यवाद नहीं प्रगटेंगे।

प्यारे साधको!

अन्न और प्राण परस्पर के पूरक हैं। अन्न प्राणों की रक्षा करता है और प्राण के कारण अन्न पचता है। अन्न ऊर्जा में रूपांतरित होता है। आयुर्वेद के अनुसार समान, अपना, उदान, व्यान और प्राण नाम के पांच प्राण हमारे शरीर में सदैव क्रियारत हैं। कैसी करामात है कुदरत की! कभी शांति से बैठकर ऐसी करामत पर सोचा है? प्राण और इन्द्रियों के संयोग से प्राणमय कोष आत्मा को आच्छादित कर देता है। कैसी अद्भुत शक्ति है प्राण की? पंच प्राण वक्तृत्व रहित आत्मा को वक्ता, दातृत्व रहित आत्मा को दाता, करतृत्व रहित आत्मा को कर्ता और गतिरहित आत्मा को गतिशील बना देता है। क्षुधा और पिपासा रहित आत्मा को क्षुधा और प्यास से युक्त बना देता है।

मैंने एक नज़्म में उस अदृश्य की करामत के संदर्भ में लिखा है—

उसके आगोश में बंदा, बेधड़क पलता रहता है।

नज़र आता नहीं फिर भी, वो तुझको प्यार करता है॥

सितमगर संत, शैतानों को भी, वो पनाह देता है।

रहम का दरिया है, नादान दिल, कैसे समझ पाए!।

प्यारे साधको!

वह परमात्मा वेदों के अनुसार प्राणमय कोष में “तेजस” नाम से जाना जाता है। वह प्राणरूपी बन जाता है। आपके द्वारा वह प्राणन क्रिया अर्थात् श्वास-प्रश्वास की क्रिया भी करता है और वातावरण में से प्राणवायु के रूप में आपमें प्रवेश भी करता है और उससे भीतर के प्राण पुष्ट होकर देहालय में बैठे हुए परमात्मा भी पुष्ट होते हैं।

कितनी अद्भुत संरचना और प्रक्रिया है। वेद कहते हैं कि ये सब प्राण और इन्द्रियों के विकार का परिणाम है। परंतु मैं कहती हूँ कि विकार इतना अद्भुत है तो निर्विकार कितना सुंदर होगा! दोस्तो, जहाँ मन और मति छोटे पड़ने लगे ऐसे तत्व का समर्पित होकर केवल ध्यान करना चाहिए। मैं तो उसको ही भजन कहती हूँ। इसे बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक समर्पण कह सकते हैं।

प्यारे भक्तो!

इन प्राणों का जादू तो देखो!

मछली अंडे को देकर दूर पानी में निकल जाती है।

बिने सेये ही अंडे से मछली बाहर निकलती है।

प्यारे साधको!

यह है प्राणमय कोष का करिश्मा! मैंने सुना है कि मछली अंडे को देकर पानी में दूर दूर निकल जाती है। अंडे को कभी सेती नहीं है परंतु उस कोष में (आवरण में) प्राणों का संचार स्वतः होता रहता है और दूर दूर पानी में तैरती हुई माँ के चिंतन मात्र से अंडे में से बच्चा

बाहर आकर मछली के रूप में तैरने लगता है। प्राणों की ऐसी अद्भुत करामत को देखकर ही मेरा मन बार बार प्राणमयकोष पर ध्यान करने के आकृष्ट होता है। और मैं आपको भी प्रेरित करती हूँ प्राणमय कोष पर ध्यान करने के लिए।

प्राणमय कोष पर ध्यान करने का अर्थ है – जहाँ कहीं भी प्राणों का संचलन देखो कि चेतना को वहाँ स्थिर कर दो। दर्शन में खो जाओ। धन्यवाद दो उस प्राणशक्ति को जो आपके भीतर और बाहर एक अद्भुत संचालन कर रही है। ध्यान के बिना इस सत्य का स्पष्ट अनुभव नहीं होगा और अनुभव के बिना धन्यवाद नहीं प्रगटेंगे।

दोस्तो, यह ध्यान आपको प्राणों के साथ तदाकर कर देगा। ऐसी ही एक अनुभूति में से और सृष्टि में बहते हुए चैतन्य प्राण प्रवाह को देखकर कुछ पंक्तियाँ प्रस्फुटित हुई हैं। वह एक प्रकार की प्रार्थना ही है धन्यवाद ही है।

वो चींटी जैसे जंतु को जुबां और दिल भी देता है।

उन्हीं के पेट में छिपकर “मोहिनी” कण पचाता है॥

ऐसे भाव के साथ ध्यान करो कि कीट पतंग से लेकर मनुष्य तक में बहता हुआ प्राण ही परमात्मा है। जो चींटी में भी धबकता है और आप में भी। उसके पास भी अभिव्यक्ति की एक भाषा है। इस भाषा को नहीं समझने वाला प्राणों पर ध्यान नहीं कर सकता। और कीट पतंगों में बहती प्राण ऊर्जा जैसी अद्भुत घटना को देखने के बाद भी अगर मनुष्य प्राणों के प्रति ध्यानस्थ न हो सकते तो वह उसका दुर्भाग्य है।

प्यारे साधको!

तो अब लगे प्राणमय कोष पर ध्यान करने में। स्वच्छ स्थान

पर शांत और स्थिर आसन में बैठकर अपने हृदय सहित पूरे ब्रह्मांड में धबकने वाले प्राणों पर ध्यानस्थ हो जाइए। और धीरे धीरे प्राणों की परम धुन के साथ तदाकार हो जाइए।



धारणा - 179

मनोमय कोष ध्यान

ध्यान सूक्ति - 179

कोष मनोमय ध्यान से साधक, बढहिं आत्मबल मन नहिं बाधक ॥

ध्यान विधि - 179

मनोमय कौष पर ध्यानस्थ
होकर विशेष आत्मबल को
प्राप्त कर लो ।



अगर मनोमय कोष
 में इच्छाशक्ति का वर्चस्व है
 तो ध्यान आसान हो जाएगा।
 आप ध्यान की इच्छा का
 आरंभ कर दो। ध्यान आत्मा
 के सारे आवरणों को हटा
 देगा। और मन मन के
 द्वारा ही परिशुद्ध हो जाएगा।
 ध्यान की गहनता के साथ
 मन की अन्य वासनाएं भी
 हट जाएंगी।

प्यारे साधको!

योग मन को नष्ट करके उसके पार चले जाने को कहता है और तंत्र मार्ग में ध्यान में द्वारा मन का सदुपयोग करके मन से अ-मन में जाना है।

मैं कहती हूँ कि मन पर भी ध्यान करो। अपनी समग्र चेतना को हकारात्मक भाव से इस तरह से मोड़ो कि मन हकार से भर जाए और धीरे-धीरे शांत हो जाए।

मनोमयकोष प्राणमयकोष के बाद का कोष है। योगियो ने और शास्त्रों ने पंचकोष में मन का समावेश किया है, इसका अर्थ ही यह है कि उसका मनुष्य जीवन में बहुत महत्व है। आपको प्रश्न उठ सकता है कि आज तक तो हम यह कह रहे थे कि ध्यान द्वारा मन के पार चले जाओ और आज हम कह रहे हैं कि मन के द्वारा ही मन के पार उतरो।

प्यारे साधको!

वैसे तो हजारों हजार प्रकार के मन हैं पर उनमें से प्रमुख दो प्रकार के मन हैं – शुद्ध मन और दूषित मन। योग शास्त्र कहता है कि

ज्ञानेन्द्रियों और मन के संयोग से विकार उत्पन्न होता है और वह आत्मा के स्वरूप को ढांककर उसके संशय रहित स्वरूप को संशय युक्त, शोक और मोह मुक्त आत्मा को शोक और मोह से युक्त और दर्शन रहित आत्मा को कर्ता आदि के रूप में प्रगट करता है। और इस मनोमय कोष में इच्छा शक्ति का वर्चस्व रहता है।

प्यारे साधको!

अगर मनोमय कोष में इच्छाशक्ति का वर्चस्व है तो ध्यान आसान हो जाएगा। आप ध्यान की इच्छा का आरंभ कर दो। ध्यान आत्मा के सारे आवरणों को हटा देगा। और मन मन के द्वारा ही परिशुद्ध हो जाएगा। ध्यान की गहनता के साथ मन की अन्य वासनाएं भी हट जाएंगी। मैंने कहीं लिखा है कि

सबद कुछ भी हो उसके राज को मन जान लेता है।

बता ये करिश्मा मिट्टी के पुतले में हुआ कैसे?।।

दोस्तो, मन को शत्रु मत समझो। आप अगर एक बार उचित रूप से मन का इस्तेमाल करना जान लेंगे तो फिर तो मन सहयोग ही सहयोग करता जाएगा। आपकी भावना पर बहुत सारी बातें निर्भर होती हैं। चोर पर भी एक बार इस तरह भरोसा रख दो कि चोर को भरोसा आ जाए कि आप उसका भरोसा कर रहे हैं। अगर ऐसा हुआ तो चोर भी आपको धोखा नहीं दे पाएगा। यहाँ तो बात बहुत आसान है। आपको किसी पराए से काम नहीं लेना है। आपके मन के पास से ही आपको काम लेना है। शुद्ध भावना के बल से अगर आप दूसरे के मन को भी परिवर्तित कर सकते हैं तो क्या आप अपने मन के लिए शुद्ध भाव रखकर आपके आध्यात्मिक विकास में उसका सहयोग नहीं ले सकते?

उसकी ऐसी करामत को, तू बंदा जान लेगा तब।

तेरे अरमान में अरमान, सिर्फ उसका बचेगा यार॥

प्यारे साधको!

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियाँ और शरीर आखिर तो उस परम शक्ति के कारण ही हैं। दोस्तो, मन की शक्तियाँ कुछ विशेष और अपार हैं। आप किसी भी शब्द को सुनते हो तब मन तुरंत, वह शब्द इस बात को ध्वनित कर रहा है, यह समझ जाता है। आप किसीकी आँखें देखते हो तो उसके मनोभावों को भी आपका मन समझ जाता है। मिट्टी के एक पुतले में कैसी करामत भर दी है उस ऊपरवाले ने? आप उसका ही स्मरण करके पूर्ण आस्था के साथ मनोमय कोष पर ध्यान करो। मन सहयोग करने लगेगा।

“खेंच पकड़ ज़ोर आता है।”- यह कहावत ऐसे ही नहीं पड़ी है, यह मन का स्वभाव है। आप अगर मन के विपरीत चलेंगे तो मन आपसे विपरीत चलने लगेगा। आप अगर उसके वश में होते जाएंगे तो उसके गुलाम बन जाएंगे। परंतु आप होश के साथ उसका सहयोग लेंगे, आपके आध्यात्मिक विकास में, आप उसकी प्रवृत्ति में प्रवृत्त होने के स्थान पर उसको शालीनता से अपनी प्रवृत्ति में प्रवृत्त करने की कोशिश करेंगे तो आप असाधारण परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

दोस्तो! एक बार मन की शक्तियाँ आपकी प्रवृत्ति की ओर मोड़ लेने लगेंगी तो बहुत ही उत्तम परिणाम शीघ्र ही मिलने लगेंगे। क्योंकि ऐसे होने से आपके और मन के बीच का संघर्ष खत्म हो जाएगा। जो ऊर्जा मन के साथ संघर्ष करने में खर्च हो रही थी वह बच जाएगी। शांति बढ़ेगी, ध्यान में तल्लीनता आएगी। फिर इन्द्रियाँ भी ज्यादा विक्षेप

नहीं करेंगी।

आपके रोम रोम में उस परमात्मा का ही अस्तित्व है और मन ही उसका दर्शन कर रहा है – ऐसे तीव्र भाव से ध्यानस्थ होने से मन प्रसन्न हो जाएगा और इन्द्रियाँ स्वतः शांत हो जाएंगी। विचारों में रूपांतरण हो जाएगा। हकारात्मकता बढ़ेगी, हताशा और निराशा दूर हो जाएगी।
प्यारे साधको!

मेरी बात सुनकर आपको आश्चर्य होगा क्योंकि आज तक आपने मन को शत्रु मान रखा था। मन के लिए आप कई पूर्वग्रहों से भरे थे। परंतु मन से सहयोग साधने के अभिगम के साथ मनोमय कोष का कार्यक्षेत्र ही बदल जाएगा। इन्द्रियाँ भी मित्र बन जाएंगी परंतु सजगता, मन का सहयोग लेना का कौशल्य तथा विशुद्ध चिंतन अनिवार्य है।

वे सारी खिड़कियों से वो आता जाता रहता है।

अगर तू देख सकता है तो हर खोली में है दीदार॥

धारणा - 180

विज्ञानमय कोष ध्यान

ध्यान सूक्ति - 180

कोष विज्ञानमय अतिगूढ भाई, तेहि पर ध्यान परम सुख दायी ॥

ध्यान विधि - 180

विज्ञानमय कौष पर ध्यान
करके परम सुख का
अनुभव करौ ।



वि

ज्ञानमय कोष पर ध्यान करने से सभी इच्छारूप नदियाँ भीतर के महासागर में विलीन हो जाएंगी। नदी जब एकबार सागर में मिल गई फिर आगे बहने को कुछ नहीं बचता। फिर न कोई खोज रहेगी, न प्यास। इच्छाओं के आड़े-टेढ़े मोड़ों से आपका गुजरना बंद हो जाएगा। आप विज्ञानमय कोष पर ध्यानस्थ होकर बुद्धि और अहंकार की गुटबंदी से स्वयं को मुक्त कर लो। क्योंकि वह एक ऐसा भूल भुलैया है कि उसमें एक बार खो जाने पर बाहर निकलने का रास्ता ढूँढना मुश्किल है। मति मनुष्य को भूलभुलैयाओं में डालती रहती है। उससे बचने का एकमात्र मार्ग है ध्यान। मति का ही सहयोग लेकर मति के पार चले जाओ।

प्यारे साधको!

शरीर के समग्र बंधारण को समझकर उसे पाने का उत्सव मनाने के लिए ध्यान की एक एक सीढ़ी चढ़ते जाओ। एक के बाद एक पांचो कोषों पर ध्यान करना है। मनोमयकोष के बाद अब विज्ञानमय कोष पर ध्यान करो।

दोस्तो, थोड़ी देर पहले मैंने बुद्धि और अहंकार की बात छेड़ी थी। पहले समझ लीजिए कि विज्ञानमय कोष क्या है? बाद में बुद्धि और अहंकार पर चर्चा करेंगे।

यह शरीर एक स्थूल आपरण है। परंतु इसके भीतर और कई आवरण भी हैं। उन सारे आवरणों को हटाने के लिए आपको ध्यान में उतरना है। और अपने आत्मबल से तथा ध्यान की शक्ति से उन आवरणों को हटाकर शुद्ध चैतन्य का अनुभव करना है।

दोस्तो, शरीर के आवरण के बाद प्राणों का आवरण; प्राणों के आवरण के बाद मन का आवरण; मन के बाद विज्ञान का आवरण।

प्यारे साधको!

अन्नमय कोष रूपी शरीर पर ध्यान करके प्राणों में प्रवेश करो। फिर प्राणों पर ध्यान करके मन में प्रवेश करो। फिर मन पर ध्यान करके विज्ञानमय कोष में प्रवेश करो। मैंने एक बार कहा था कि कोष के कई अर्थ होते हैं। उनमें से यहाँ प्रमुख दो अर्थ लागू हो सकते हैं – एक आवरण और दूसरा खजाना।

शुद्ध चैतन्य की पहचान के आगे शरीर से लेकर विज्ञान तक के कोष आवरण ही हैं। परंतु वे केवल आवरण नहीं हैं। उन आवरणों की शक्तियाँ भी अद्भुत हैं। उन आवरणों में भी खजाना भरा है। प्रत्येक खजाना उपयोगी है। दुन्यवी जीवन जीने में उनसे मदद हो रही है। परंतु आपको एक भी खजाने पर रुकना नहीं है। आपका ध्येय गति है, सिद्धि नहीं।

बुद्धि और अहंकार के आवरण को योगशास्त्र विज्ञानमय कोष कहता है। बुद्धि का स्वभाव है हर बात का अर्थघटन करते रहना। तर्क, वितर्क और कुतर्क करना और अहंकार का स्वभाव है हमेशा केन्द्र में रहना। परंतु ये कभी भी संभव नहीं हैं। आध्यात्मिक रूप से तो बिल्कुल नहीं। क्योंकि आध्यात्मिक जीवन के केन्द्र में सिर्फ परमात्मा होते हैं।

अहंकारी पुरुष हमेशा स्वकेन्द्री होता है। उसके लिए उसका अहंकार पुष्ट हो वह सत्य और अहंकार खंडित हो वह असत्य। परंतु यह सम्यक बात नहीं है। अनुचित है। दूसरी बात यह भी सत्य है कि हकारात्मक बुद्धि और हकारात्मक अहंकार मनुष्य के बाहरी अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए बहुत काम आते हैं। आप चाहें तो उस बुद्धि तत्व पर ध्यान करके विज्ञानमय कोष का आत्मोन्नति में उपयोग करके

फिर उस आवरण से ऊपर उठ सकते हो। अगर विज्ञानमय कोष पर ध्यान स्थिर हो गया तो आपका भटकना बहुत जल्दी बंद हो जाएगा। क्योंकि ज्यादातर खेल बुद्धि करती है, बुद्धि भटकाती है, परंतु ध्यान के द्वारा एक बार जो बुद्धि का शुद्धिकरण हो गया तो आप अहंशून्य होते जाएंगे अथवा आपका सात्विक अहंकार ठान लेगा कि मुझे सारे बंधनों से मुक्त हो जाना है। आपकी हकारात्मकता आपकी मदद करती जाएगी। ऐसे में भीतर से आवाज़ आएगी कि -

तमन्नाओं के कूचे में, भटकना बंद तू कर दे।

जल्दी इस भूल भुलैया से, बचा ले खुद को बंदा॥

तू दिल में सात सागर और, सब दरियों का मिलना देख।

फिर कुछ न रहेगा ढूँढना, बहना, कहीं मिलना॥

प्यारे साधको!

विज्ञानमय कोष पर ध्यान करने से सभी इच्छारूप नदियाँ भीतर के महासागर में विलीन हो जाएंगी। नदी जब एकबार सागर में मिल गई फिर आगे बहने को कुछ नहीं बचता। फिर न कोई खोज रहेगी, न प्यास। इच्छाओं के आड़े-टेढ़े मोड़ों से आपका गुजरना बंद हो जाएगा। आप विज्ञानमय कोष पर ध्यानस्थ होकर बुद्धि और अहंकार की गुटबंदी से स्वयं को मुक्त कर लो। क्योंकि वह एक ऐसा भूल भुलैया है कि उसमें एक बार खो जाने पर बाहर निकलने का रास्ता ढूँढना मुश्किल है। मति मनुष्य को भूलभुलैयाओं में डालती रहती है। उससे बचने का एकमात्र मार्ग है ध्यान। मति का ही सहयोग लेकर मति के पार चले जाओ।

प्यारे साधको!

यहाँ आपकी मदद आपको ही करनी पड़ेगी। आपका आध्यात्मिक पुरुषार्थ बढ़ेगा तो अस्तित्व में से अपार आशीर्वाद बरसने लगेंगे। दोस्तो, स्वार्थी मत बनना, प्रमाद मत करना, रेडीमेड आशीर्वाद पाने के लिए बाबाओं के पास भटकना बंद करो। स्वयं के अस्तित्व के साथ अगर प्रयोग करने के लिए खुद नहीं जागे तो कोई बाबा तो क्या स्वयं भगवान भी आपकी मदद नहीं कर पाएंगे।

पंचकोष पर ध्यान करना यह स्वयं के पूरे अस्तित्व को समझने की एक आध्यात्मिक यात्रा है। तो बैठो ध्यान में और जान लो कि बुद्धि का साम्राज्य कहाँ तक है? विज्ञानमय कोष क्या है? जानते ही आप उसके पार चले जाओगे।

तू है तेरा ही चारागर, कोई माने या ना माने।

अक्रीदत जो नहीं तुझ में, तो हर चारा बेचारा है॥

सुबह में रोशनी बनकर, तेरी पलको को सहलाता।

शाम को नींद बनकर, अपनी बाहों में समाता हूँ॥

प्यारे दोस्तो!

ये सारी बातें बुद्धि की पहुँच के बाहर की हैं। विज्ञानमय कोष पर ध्यान करके इस परम सत्य को जान लो।

धारणा - 181

आनंदमय कोष ध्यान

ध्यान सूक्ति - 181

आनन्दरूप बनो कोष यह ध्यायी, आनन्द कोष प्राप्त करो भाई ॥

ध्यान विधि - 181

आनंदमय कौष पर ध्यान
करके परमानंद को प्राप्त
कर लो ।



अगर आपके पास ध्यानपूर्ण दृष्टि है तो आप भीतर और बाहर हर जगह से, हर जगह में आनंद को ढूँढ़ पाओगे। दोस्तो, अगर आप आनंदित होना चाहते हैं तो समग्रता के साथ एक के बाद एक सभी कोषों से ऊपर उठकर आनंदमय कोष पर ध्यानस्थ होकर कुछ अवर्णनीय, अकल्पनीय और अव्यक्त की प्राप्ति कर लो।

प्यारे साधको!

सभी आवरणों के अन्त में है आनंदमय कोष। वह आत्मज्योति से बिलकुल निकट है। मैं तो मेरे साधको से बार बार कहती हूँ कि हौसला रखो, प्रसन्न रहो, साधना के लिए हकारात्मक अभिगम रखो, साधना में प्रमाद मत करो। सत्य और साधना जिनका मार्ग हो ऐसे लोगों के सानिध्य में रहो। एक एक करके सभी कोषों की ध्यानयात्रा करो। तब अंत में आनंद की अनुभूति होने लगेगी।

एक एक द्वार में प्रवेश करके, एक एक के पार जाकर आपको मूल स्रोत में मिलना है—वह है आनंदमय कोष। दोस्तो, आत्मतत्त्व तो सर्वसाक्षी है। उसे आनंद क्या—शोक क्या? सुख क्या—दुःख क्या? फिर भी आनंदमय कोष को अंतिम और ईश्वरीय प्रकाश से निकट का कोष बताया गया है, क्यों? क्योंकि वास्तव में वह ईश्वर से निकट है। इसलिए तो परमात्मा को सच्चिदानंद कहते हैं। आनंदमय कोष पर ध्यान करते हुए संकल्प करो कि मैं आनंद हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मैं परब्रह्म हूँ, मैं सुख का धाम हूँ, ज्ञान और विज्ञान मैं ही हूँ, साकार और निराकार दोनों मुझसे

भिन्न नहीं हैं।

प्यारे साधको!

मैं कितना भी कहूँ कि आप आनंद हो, आप चैतन्य हो, आप परब्रह्म हो परंतु आपके पास इन सत्त्यों की कोई झलक नहीं है, न कोई अभ्यास है, न कोई अनुभव है तो क्या अर्थ? कैसे मानेंगे आप मेरी बात को?

दोस्तो, आप तो उन्हीं बातों को पकड़कर बैठे हैं जो दुनिया ने आपको जन्म से पकड़ा दी हैं और आपके मन ने पकड़ ली हैं। उधार नाम रूप और गुण में आप रम रहे हैं। उसे छोड़ने का विचार तक नहीं कर सकते हैं। उसे छोड़ने में आपको तकलीफ होती है। उधार बातों को आपने अपनी पहचान बना ली है। वास्तव में आप जो नाम, रंग, रूप और गुण में दिख रहे हैं वह है ही नहीं। आप तो कोई और ही हैं। आपने जो आपको मान लिया है उससे आप अनेक गुने शक्तिमान और अद्भुत हैं।

नहीं चाबी नहीं ताले, खजाना खूब रखा है।

समझ है लूटने की तो, इल्म को जानकर लूट लो।

प्यारे साधको!

सारा खजाना खुला पड़ा है। आदमी कितना पागल है! जो खजाना अपने पास है उसके लिए जिंदगीभर दौड़ता है, भागता है, भटकता है, दर दर सर टेकता है और भीतर के खजाने के प्रति लक्ष्य ही नहीं देता। उस दुर्लक्ष्य के कारण खजाना दिखाई नहीं देता। पूर्वग्रहों के कारण मनुष्य ने खुद को दीन, हीन और लाचार समझ रखा है। उसके उपरांत भी कुछ कारण हैं। आपने भीतर के खजाने के महासौन्दर्य को

देखने की दृष्टि गंवा दी है। उस मधुर संगीत के प्रति आप बहरे बन गए हैं। आप जीवन का आनंद लेना ही भूल गए हैं। उस आनंद की अनुभूति तो कदम कदम पर हो रही है। परंतु इसलिए आप उसे प्यार करना सीखो। ध्यान उसे प्यार करने का तरीका है।

प्यारे भक्तो!

मैं कई बार कहती हूँ कि ध्यान को प्रेम से कम मत समझना। मुझे तो लगता है कि कभी कभी तो ध्यान प्रेम से भी आगे है। क्योंकि प्रेम में तो दो होते हैं परंतु ध्यान में तो एक ही की हाजरी से पूरी महफिल सजती है। आपको उस चैतन्य के प्रति प्रेमपूर्णता से रसलीन होना पड़ेगा। तो कदम कदम पर उसके करिश्मों का अनुभव करके आप हर पल आनंदित हो पाएंगे।

कभी फल से, कभी बादल से, कैसा रस बरसता है?

शहद में कितने फूलों से, सनम मिठास भर देता?।

तू कैसे सुन सकेगा, है नहीं दिलदार जो सच्चा।

जल में जलतरंग और हवा में बांसुरी बजती है॥

प्यारे साधको!

अगर आपके पास ध्यानपूर्ण दृष्टि है तो आप भीतर और बाहर हर जगह से, हर जगह में आनंद को ढूंढ पाओगे। दोस्तो, अगर आप आनंदित होना चाहते हैं तो समग्रता के साथ एक के बाद एक सभी कोषों से ऊपर उठकर आनंदमय कोष पर ध्यानस्थ होकर कुछ अवर्णनीय, अकल्पनीय और अव्यक्त को प्राप्त कर लो।



एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की

प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरुमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरुमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण हृदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरुमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैंतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रही हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजियों के लिए पूज्य गुरुमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रही हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रही हैं। पूज्य माँ कहती हैं कि-

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ खलकृत के लोगों को।

चली जाऊँ तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना॥

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरुमैया हरेश्वरीदेवीजी के परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ -

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा हैं कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधियों की शोध की और कुछ प्राचीन विधियों की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की जरूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का ह्रास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की जरूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सद्गुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरुमैया अंतिम पैंतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रही हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरुमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।